प्रथम – अध्याय

प्रस्तावना : अभिलेख-परिचय

मानव सभ्यता एवं संस्कृति के इतिहास में समय – समय पर अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन उद्‌भूत हुए। भावाभिव्यक्ति में सभ्यक् साधनों का अन्वेषण भी इसी भांति का एक परिवर्तन है। यद्यपि भावों की अभिव्यक्ति नेत्र, हस्त, अंगुलि आदि के संकेतों से भी की जाती है किन्तु ये सब साधन न तो स्थायी है और न ही पर्याप्त। अतः मानसिक क्रियाओं की अभिव्यक्ति के लिए भाषा अस्तित्व में आयी। मनुष्य जो कुछ अपने उपचेतन में अनुभूत करता है। उसी को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। विचार भाषा का प्राण एवं आत्मा है जो निरन्तर क्रियाशील रहता है। वह केवल स्वर तन्त्रों का स्पन्दन मात्र नहीं है अपितु वह वाह्य वातावरण है जो स्वर तन्त्रों को संचलित होने के लिए प्रेरित एवं बाध्य करता है। भाषा को सार्थक बनाने के लिए उसे किसी पद्धति में परिबद्ध करना भी आवश्यक होता है। शब्द निर्धारित नियमों के अनुसार ही मुख से निकालने पड़ते हैं। ये शब्द स्वयं विशेष–विशेष स्थानों से सतत् ध्वनियां निकलने से बनते हैं और ये ध्वनियाँ अलग–अलग जिह्वा के स्पर्श से अलग–अलग बनती हैं। ऐसी ही ध्वनियों को कल्पित करके वर्णों का निर्माण किया जाता है। एक वैज्ञानिक भाषा का यह गुण है कि जो अक्षर लिखे जायं वे एक से अधिक ध्वनि के परिचायक न हों न ही ऐसा कोई अक्षर हो जो लिखा तो जाय किन्तु उसका उच्चारण संभव न हो। संक्षेपतः भाषा मन की टकसाल में गढ़ा हुआ एक ऐसा सिक्का हैं जो अचिंतित रेखाओं से गुजर कर चिंतित वस्तु द्वारा रुप ग्रहण करता है। विचारों का बोध वाक्यों द्वारा ही होता है। वाक्य ही भाषा का छोटे से छोटा अवयव हैं। जिस प्रकार विचारों के अन्तर्गत भाव होते हैं उसी प्रकार वाक्यों के अन्तर्गत शब्द होते हैं। लिपि भाषा के प्रतिनिधि का कार्य करती है। यह प्रतिनिधित्व कतिपय निर्धारित चिन्हों द्वारा ही संभव हैं। संसार के निवासी अपने देश, काल तथा परिस्थिति के अनुसार

आरम्भ से आज तक विभिन्न ध्वनियों के अनुसार चिन्हों का प्रयोग करते हैं। मानव–विकास के साथ–साथ ध्वनियों का विकास भी होता रहा जो मनुष्य ने निर्धारित की थी। यही कारण है कि भाषा और लिपि में सदैव परिवर्तन होता रहा। परिवर्तन से विकास, विकास से संधर्ष संघर्ष से जीवन की उपयोगिता तथा जीवन की उपयोगिता से उसकी सार्थकता सिद्ध हुई।

मानव–समाज को नवीन दृष्टिकोण प्रदान करने वाले आविष्कारों के सापेक्षिक महत्व को लिपिबद्ध करना भले ही दुष्कर प्रतीत होता है किन्तु लेखनकला की उपयोगिता एवं महत्ता को किसी भांति अप्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता। मानव में अन्य जीवों पर प्राप्त श्रेष्ठता–सूचक गुणों और उपलब्धियों में भावों और विचारों को अंकित करनेकी उसकी क्षमता विशिष्ट है। इसके कारण मानव के लिए यह संभव हो सका कि वह ज्ञान का सर्जन, संरक्षण, संवर्धन करे तथा उसमें सातत्य बनाये रखे। इसके द्वारा वह अपने अनुभवों और विचारों को मूर्तरुप दे सकता है। इन सबका आधार लेखन है। लेखन के आविष्कार उसमें सुधार और विकास की कथा अत्यन्त रोचक है। इसका इतिहास भी इतना विस्तृत एवं उसमें तथ्यों की इतनी अधिकता है कि उनका विधिवत् अध्ययन एवं प्रस्तुतीकरण सरल नही है तथापि इसकी कतिपय उपादेयताओं की ओर ध्यान आकृष्ट अवश्य किया जा सकता है जो मात्र लिपि द्वारा ही संभव है। दूरस्थ स्थानों पर अपने विचारों को सम्प्रेषित करने के लिए लिपि से अधिक सुलभ अन्य कोई साधन नहीं हैं। यदि लिपि की अविद्यमानता होती तो प्राचीन काल में लोग अपनी उपलब्धियों को सुरक्षित न रख पाते तथा उनकी उपलब्धियों का ज्ञान कालान्तर के व्यक्तियों को न हो पाता। अतीत की स्थितियों एवं उसके परिणामों के ज्ञान के अभाव में मनुष्य नवीन शोधों, आविष्कारों तथा भविष्य की स्थितियों के निर्धारण में असमर्थ होता। कला, दर्शन, विज्ञान व शिल्प की प्रगति भी सर्वथा अवरुद्ध हो जाती। कालान्तर की पीढ़ी अतीत ज्ञान के अभाव में विकास न कर पाती। न तो भाषा का विकास

होता और न ही अनेक ग्रन्थों अथवा कृतियों को मूर्तरुप दिया जा सकता। जैसे-जैसे प्राचीन लिपियां अस्तित्व में आने लगीं, वैसे-वैसे उनकी तुलना भी अन्य लिपियों से होने लगी। उन पर अनेक शोध होने लगे एवं वर्गीकरण अस्तित्व में आये। भ्रूणलिपि, चित्रात्मक लिपि, सूत्रात्मक लिपि, भावात्मक लिपि, ध्वन्यात्मक लिपि आदि इसी विकास के परिणाम तथा अक्षरात्मक लिपि, वर्णात्मक लिपि एवं रेखात्मक लिपि इसके अवान्तर भेद हैं।

लेखन के लिए सामग्री की आवश्यकता होती है। सामग्री का चयन भी दो तथ्यों पर आधारित है। प्रथम सामग्री की सुलभता तथा द्वितीय अभिलेख की प्रकृति। वृहदाकार पुस्तकों का लेखन साधारण तथा कोमल पदार्थों पर किया जाता है जिनके नष्ट होने की संभावना अधिक बनी रहती है। धर्मानुशासन, राज-प्रशास्तियों तथा व्यावहारिक लेखों का अंकन प्रस्तर, ताम्र, लौह, रजत, स्वर्ण प्रभृत चिरस्थायी वस्तुओं पर किया जाता था। प्रथम प्रकार के लेखन उपकरण के रुप में भूर्जपत्र का उल्लेख ग्रीक लेखक क्विन्टस कर्टियस के विवरण में मिलता है।[1] अमरकोश में भूर्ज का उल्लेख औषधि वर्ग में हुआ है।[2] ताड़पत्र का प्रयोग भी लेखन सामग्री के रुप में किया जाता था। राजबली पाण्डेय का कथन है कि बौद्ध जातक ग्रन्थों[3] में उल्लिखित पण्ण (पर्ण) इसी ताड़पत्र का बोध कराता है।[4] हुइली की प्रधान एवं महत्वपूर्ण कृति ह्वेनसांग के जीवन चरित में एक अनुश्रुति का उल्लेख है कि भगवान बुद्ध की मृत्यु के बाद सम्पन्न हुई प्रथम बौद्ध-संगीति में लिखित त्रिपिटक ताड़पत्र पर लिखे गये थे।[5] ताड़पत्र पर लिखा हुआ सबसे पुराना हस्तलेख एक नाटक के एक खण्ड का है जिसे लूडर्स ने ईसा की दूसरी शताब्दी का स्वीकार किया है।[6] मैकार्टना को काशगर से इस भांति का एक लेख प्राप्त हुआ है जिसका काल विद्वानों ने चौथी शताब्दी निर्धारित किया है।[7] इसी भांति कागज, सूती वस्त्र[8], काष्ठपट्ट[9], चर्म[10] आदि पर लेखन कार्य किया जाता था किन्तु ये पदार्थ नश्वर हैं।

जब मनुष्य ने गुहाभित्तियों पर खरोच लगायी तो उसकी अभिरुचि कला की स्थिरता की ओर अग्रसर हुई। शनैः शनैः लेखन कला ने न केवल व्यापकता प्राप्त की अपितु इसके स्थायित्व के लिए जो राजकीय आदेश आवश्यक एवं महत्वपूर्ण समझे गये उन्हें प्रस्तर पर उत्कीर्ण किया गया । आदेश के स्थायित्व की मनोभावना का उद्वेग तीसरी शताब्दी ई.पू. के मौर्य सम्राट अशोक के अभिलेख में प्रवहित परिलक्षित होता है।[11] अब लेखों का अंकन उन चट्टानों पर भी होने लगा जो चट्टानें विभिन्न विधियों से चिकनी की जाती थीं। स्तम्भों, पट्टिकाओं, मूर्तियों के आसन अथवा पृष्ठभाग, भाण्डों, पिटकों, भित्तियों, गुफाओं आदि पर लेख उत्खचित होने लगे। प्रस्तर पर लिखे गये अभिलेखों की अनुकृति पर विभिन्न धातुओं पर लेख उत्टंकित करना पुराशंसियों को अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ। अतः स्वर्ण, रजत, ताम्र, जस्ता, पीतल, लौह तथा रांगे पर भी लेख उत्खचित हुए। यद्यपि बौद्ध जातकों[12] से ज्ञात है कि धनी दुकानदारों के महत्वपूर्ण कौटुम्बिक लेख, राज्यादेश तथा काव्य छन्दों तथा नीति सम्बन्धी सूक्तियों का लेखन सुवर्णपट्टों पर होता था तथापि धातु की बहुमूल्यता के कारण इसके प्रयोग को प्रचुरता न प्राप्त हो सकी। पुनः जातक ग्रन्थों में समाज के आदर्श रुप को वर्णित किया गया है, यथार्थ की भावभूमि से परे उसमें काल्पनिक तथ्यों का समावेश अधिक दिखायी देता है।[13] इसके विपरीत बर्नेल की अवधारणा है कि राजपत्रों तथा भूमिदान के लिए भी सोना लेख उकरण के रुप में प्रयुक्त होता था।[14] इस भांति का एक सुवर्णदान पत्राभिलेख कनिंघम महोदय को तक्षशिला के समीप स्थित गंगु स्तूप से मिला है। इस अभिलेख की लिपि खरोष्ठी है।[15] वर्मा के एक गांव से दो सुवर्ण पत्र अभिलेख प्राप्त हुए हैं जो बौद्ध धर्म से सम्बन्धित है क्योंकि ये बौद्ध सूत्र तथा पालि छन्द का उद्वहन कर रहे हैं।[16] विद्वानों ने लिपि शास्त्रीय आधार पर इन सुवर्ण पत्राभिलेखों का समय चौथी या पांचवी शताब्दी माना है।[17]

यद्यपि रजत स्वर्ण की अपेक्षा सस्ती धातु है तथापि इसका प्रयोग लेखन

उपकरण के रुप में अपेक्षाकृत कम मिलता है। रजत पत्र पर उत्खचित लघु हस्तलेख तथा राजकीय लेख के प्रमाण अद्यतन सुरक्षित हैं। इसका प्राचीनतम उदाहरण भट्टिप्रोलु से प्राप्त होता है।[18] तक्षशिला से प्राप्त रजत-पत्र-लेख अवान्तर कालीन है।[19] धातु खण्डों में लेखन उपकरण के रुप में सर्वाधिक प्रयोग ताम्र का हुआ है। ताम्र धातु को अभिलेख के विषयानुसार, पत्रों, पट्टों आदि रुपों में परिवर्तित कर उन पर विषय-वस्तु का अंकन किया जाता था। भूमि दान सम्बन्धी विषयों का अंकन ताम्रपत्रों पर बहुलता से प्राप्त होता है। इन पत्रों को उत्खचित कर दान गृहीता को प्रदान किया जाता था जिससे दान गृहीता को दान में प्राप्त भूमि पर उसका स्वत्व सिद्ध हो सके।[20] फाह्यान का यात्रा विणरण सूचित करता है कि अपने यात्रा काल में फाह्यान ने अनेक बौद्ध विहारों के पास ताम्रदान पत्राभिलेख सुरक्षित देखे थे। इस सन्दर्भ में राजबली पाण्डेय महोदय का यह कथन ग्राहय प्रतीत होता है कि "इस विषय में कुछ असंदिग्ध रुप से नहीं कहा जा सकता किन्तु यहां यह निर्देश कर देना चाहिए कि लिपि शास्त्र के अनुसार मौर्यकालीन सोहगौरा ताम्रपत्र अभिलेख की खोज फाह्यान के कथन को संभव बना देती है।"[22] चीनी यात्री ह्वेनसांग का कथन है कि कनिष्क के काल में आयोजित बौद्ध संगीति में सुत्तपिटक, विनय पिटक तथा अभिधम्म पिटक पर जो टीकाएं तैयार हुई थीं उनको ताम्रपत्रों पर ही लिपिबद्ध किया गया था तथा इन ताम्रपत्रों को एक प्रस्तर-पेटिका में सुरक्षित किया गया था।[23] बरमा तथा सिंहल से प्राप्त ताम्र पर लिखित कतिपय पुस्तकों के प्रमाण अद्यतन ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित पाये जाते हैं।[24] ईसा की छठीं शताब्दी तक ताम्र लेखन उपकरण के रुप में मन्थर गति से प्रयुक्त प्रतीत होता है किन्तु छठी शताब्दी के बाद इसका प्रयोग बहुलता से प्राप्त होने लगता है। ये ताम्र पत्र प्रायः पीटकर विभिन्न आकृतियों में तैयार किये जाते थे। मात्र सोहगौरा का ताम्र पत्राभिलेख इस भांति का है जो बालू के सांचे में ढालकर बनाया गया प्रतीत होता है। जिसमें प्रतीकों सहित वर्ण पहले ही

अयस-लेखनी या तीक्ष्ण काष्ठ-लेखनी से निर्मित किये गये प्रतीत होते हैं। इस पत्र पर प्रतीक तथा वर्ण दोनों उभरे हुए प्राप्त होते हैं।[25] प्राप्त ताम्र पत्रों में कुछ इस भांति की कृशता को प्राप्त हैं कि उन्हें दोहरा मोड़ देना अति सहज है। तक्षशिला का ताम्रलेख तो दुहरा मुड़ा हुआ ही प्राप्त हुआ है। इन ताम्रलेखों के रुप में भिन्नता के दो कारण प्रतीत होते हैं- प्रथम तो लेख-उपकरण का आकार और द्वितीय लेख्य विषय-वस्तु का आकार। लेखन के समय लेखक ताम्रपत्रों पर बायीं ओर पर्याप्त अवकाश छोड़ देता था। सर्व प्रथम एक अधिकृत तथा कुशल लेखक विशिष्ट अधिकारियों द्वारा तैयार की गयी विषय वस्तु को स्याही से ताम्रपत्र पर अंकित कर देता था। इसके बाद उत्खाता छेनी से उन अंकित वर्णों को उत्टंकित करता था। ऐसे भी ताम्रलेख प्राप्त हुए हैं जहां रेखाओं के स्थान पर बिन्दुओं का उत्टंकन किया गया है।[26] फ्लीट महोदय ने दक्षिण भारत के कतिपय ताम्रपत्राभिलेखों के सूक्ष्म वर्णों के अध्ययन के बाद यह अवधारणा व्यक्त की कि ताम्रपत्रभिलेख तैयार करने में सर्वप्रथम ताम्रपत्रों को खड़िया मिट्टी से भली-भांति रगड़ा जाता था। पुनः लेखक उस पर तीक्ष्ण अयस-खण्ड से वर्ण का उत्खचन करता था और अन्त में उत्खाता सुन्दर यन्त्र से उन पर उत्टंकन करता था। वर्ण की सुरक्षा के लिए ताम्रपट्टों की कोरें मोटी तथा मुड़ी हुई निर्मित की जाती थीं। इसी उद्देश्य से संयुक्त पट्टों में पहले पट्ट का प्रथम पृष्ठ तथा अन्तिम पट्ट का अन्तिम पृष्ठ खाली छोड़ दिया जाता था।[27]

राजकीय शासन के राजकीय होने के अभिज्ञान के लिए उन पर राजकीय मुद्रा संश्लिष्ट कर दी जाती थी। यह संश्लिष्टता अनेक विधियों से की जाती थी। कभी-कभी यह मुद्रा पट्टों को एक साथ संयुक्त करने वाले छल्लों के सन्धि-स्थल को आवृत्त करने वाले धातु खण्डों से संश्लिष्ट कर दी जाती थी।[28] प्रायः राजकीय मुद्रा अलग से ढाल ली जाती थी तथा अभिलेख और अंक विपरीत दबी हुई सतह पर उभार दिये जाते थे।[29] ताम्रपत्रों के साथ संयुक्त म्रद्राएं प्रायः ताम्रनिर्मित ही

होती थी किन्तु विरल परिस्थितियों में उद्देश्य विशेष की पूर्ति हेतु ये स्वर्ण से भी निर्मित होती थीं। बाणभट्ट का कथन है कि हर्षवर्धन स्वर्ण मुद्रा का प्रयोग करता था।[30]

स्वतन्त्र अभिलेख के उल्खनन में पीतल का प्रयोग अति न्यून है। पीतल–निर्मित मूर्तियों के पाद–पीठ अथवा पृष्ठ भाग पर ही कतिपय लेख प्राप्त होते हैं इस भांति की मूर्तियों तथा लेखों का समय भी विवेच्य काल के उपरान्त सातवीं शताब्दी ही सिद्ध होता है।[31] पीतल की भांति ही कांसे का प्रयोग भी अति विरल रुप में प्राप्त होता है। मात्र कतिपय कांसे की घंटियों पर दान–दाताओं के नाम उत्कीर्ण है जो बहुत बाद की है। अयस का प्रयोग भी अल्प रुप में ही प्राप्त होता है। मात्र मेहरौली लौह स्तम्भ ही इसका एक उदाहरण है। कालान्तर के उदाहरण 15वीं शताब्दी के पूर्व नहीं रखे जा सकते।[32] लोहे की ही भांति रांगे के उदाहरण भी अत्यल्प हैं। इस भांति का मात्र एक हस्त लेख ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित है।[33]

स्थायित्व बोध एवं उपलब्धता के कारण सर्वाधिक लेखन–कार्य पाषाणों पर किया गया। ईसा पूर्व की सदियों में विद्या कण्ठगता परिधि से बहिर्गत हुई तथा पाषाणों पर लिपि के रुप में मूर्त हो गयी। शिला खण्डों, स्तम्भों, प्रस्तर–प्रतिमाओं, स्तूपों, गुफाओं आदि पर लेख अंकन किया गया। प्राचीन काल से लेकर अद्यतन अनेक अभिलेख प्रकाश में आये। उल्खनन आदि विधियों से इनकी प्राप्ति का क्रम अब भी अक्षुण्ण है। इस तथ्य का अनुमान सर्वथा असंभव है कि अभी कितने अभिलेख प्रच्छन्न हैं। यद्यपि प्राचीन इतिहास का अध्येयता अन्य सामग्रियों की अपेक्षा अभिलेख को अधिक विश्वसनीय सामग्री मानता है तथापि यह दृष्टिकोण उसका कथमपि परिवर्तित नहीं होता कि प्राप्त तथ्यों का नीर–क्षीर–विवेक पूर्वक विश्लेषण किया जाय। अभिलेखों की प्रधान विशेषता यह है कि वे अपनी समसामयिक स्थितियों का निरुपण करते ही है किन्तु कभी–कभी अतीत की धटनाओं अथवा परम्परागत तथ्यों का भी उद्धाटन करते हैं।

अभिलेखों के वर्ण्य-विषय भी विविध हैं। विभिन्न लेखों में वर्णित मार्ग, नगर विजय के वृत्तान्तों से भारत की भौगोलिक सीमा का परिज्ञान होता है। इन तथ्यों की महत्ता साहित्यिक कृतियों में प्राप्त साक्ष्यों के तादात्म्य के परिणामस्वरुप और अधिक बृद्धगत हो जाती है। अभिलेखों में जब कभी दान का उल्लेख प्राप्त होता है तो दान-दाता, दान-गृहीता तथा दान की स्थिति, यदि भूमिदान है तो भूमि की भौगोलिक सीमा के उल्लेख प्राप्त होते हैं। शासक द्वारा उद्देश्य विशेष से की गयी यात्रा के वृतान्त में विविध नगरों तथा नदियों का उल्लेख स्वाभाविक हो जाता है। दूत सम्प्रेषण की स्थिति में भी विभिन्न प्रदेशों का उल्लेख सहज रुप से होता है। विजिगीषु नरेश द्वारा की गयी विजय के उल्लेख में साम्राज्य-सीमा पर स्थित पर्वतों तथा नदियों का उल्लेख प्रशस्तिकार द्वारा किया जाता है। राजा की धार्मिक भावनाओं को जब मूर्तरुप प्राप्त हुआ है तो समय-समय पर अनेक गुफाएं, स्तूप, विहार आदि अस्तित्व में आये। इनमें अधिकाधिक कृतियां लेख युक्त हैं जो राजा की भावोष्मा का प्रकट करती हैं। अभिलेखों में विभिन्न बन्दरगाहों तथा उसकी सुरक्षा के लिए राजा द्वारा किये गये उपायों, सार्थवाह, उसकी कार्य-प्रणाली, उसके कार्य, उनके यात्रा-मार्ग तथा यात्रा के स्वरुप आदि का भी विवरण प्राप्त होता है। ईसा पूर्व की तीसरी सदी तक उत्कीर्ण लेखों में भले ही विषय-वस्तु की विविधता परिलक्षित होती हो किन्तु अशोक के काल में उत्कीर्ण लेख में वर्ण-विषयक एकनिष्ठता आ गयी तथा धर्मानुशासना ही इसका मुख्य प्रतिपाद्य हो गया। इस काल के अभिलेखों से यह तथ्य भी उद्धाटित होता है कि मौर्ययुग में भारत की प्रधान भाषा प्राकृत थी तथा ब्राह्मी प्रधान लिपि थी जो इस तथ्य का प्रमाण है कि तत्कालीन समाज में भाषा विषयक कोई विवाद न था। कि बहुना अशोक के जो लेख इतर लिपियों में प्राप्त हुए है उनकी भाषा भी प्राकृत ही है। कालान्तर में मौर्य साम्राज्य के विघटन के साथ ही एकरुपता की यह संश्लिष्टता भी विशृंखलित हो गयी। गुप्तकाल में संस्कृत राज भाषा हो गयी। गुप्तकाल के समस्त लेख संस्कृत भाषा तथा ब्राह्मी लिपि में प्राप्त होते हैं। इनके उद्देश्यों में

समरुपता परिलक्षित होती है। कालान्तर में विशाल साम्राज्य के विघटन के साथ ही राष्ट्रीयता की भावना भी क्षीण होने लगी।

पुरा अभिलेख भारतीय सांस्कृतिक ज्ञान के परिचायक हैं। यदि अशोक के अभिलेख प्राप्त न होते तो हम अशोक की मनोवृत्तियों तथा शासन-व्यवस्थाओं से परिचित न होते। उसकी बौद्ध धर्म के प्रति अनुशक्ति, धर्म विजय तथा धम्म प्रचार हेतु किये गये विविध उपायों से हम अनभिज्ञ होते। इसी प्रकार हाथी गुफा अभिलेख के अभाव में खारवेल के जीवन चरित से, जूनागढ़ अभिलेख के अभाव में रुद्रदामा के जीवन चरित से तथा प्रयाग-प्रशस्ति के अभाव में समुद्र गुप्त के जीवन चरित से अनभिज्ञ होते। कतिपय विद्वानों की अवधारणा है कि अभिलेखों को ही आधार मानकर कालिदास प्रभृत विद्वानों ने रधु की विजय यात्रा का वर्णन किया है।[35] अभिलेख विविध साहित्यिक कृतियों की प्रामाणिकता सिद्ध करने में भी अत्यन्त सहायक सिद्ध होते हैं। भारतीय विचारधारा सदैव धर्म से अनुप्राणित रही है। विभिन्न सम्राट भी धार्मिक रुप से उदार होते हुए भी किसी विशेष धर्म के प्रति अधिक अनुरक्त रहे हैं जिसका यथेष्ट ज्ञान अभिलेखों से ही प्राप्त होता है। अशोक, पुष्यमित्र शुंग, खारवेल, कनिष्क तथा गुप्त सम्राटों को इसके प्रमाण स्वरुप प्रस्तुत किया जा सकता है।

प्राचीन भारतीय अभिलेख समकालीन राज्य-व्यवस्था तथा शासन व्यवस्था के भी अप्रतिम परिचायक हैं। अशोक अपनी प्रजा के सुख के लिए आचार-मार्ग का निर्धारण करता है तथा कहता है कि इस मार्ग के अनुसरण से प्रजा इहलोक तथा परलोक में सुख का अनुभव करेगी।[36] महाक्षत्रय रुद्रदामा द्वारा उत्खनित कराये गये नहर प्रजा के कल्याण तथा सुख के लिए ही थे। पुरा अभिलेख राजा की शासन-प्रणाली का भी निर्देश करते हैं। अशोक के अभिलेखों में राज्य के पदाधिकारियों तथा उनके कार्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। गुप्त कालीन अभिलेखों में भी इस भांति के उल्लेख प्राप्त होते है। कतिपय प्रसंगों में राज्य के अन्तर-सम्बन्धों

का बोध भी अभिलेखों के माध्यम से होता है। अशोक का त्रयोदश शिला लेख अनेक विदेशी राजाओं से उसके सम्बन्ध की सूचना देता है।[37] कालान्तर के अभिलेख भी अपने काल के अन्तर-राज्य सम्बन्ध के बोधक प्रतीत होते है। ऐसे भी सन्दर्भों का अभाव नहीं है जब किसी विदेशी आक्रान्ता ने भारत भूमि पर अधिकार के साथ ही यहां की धर्म एव संस्कृति को स्वीकार कर लिया हो। बेसनगर शरुध्वल में उल्लिखित यूनानी राजदूत हेलियोडोरस को भागवत कहा गया। कुषाण सम्राटों की मुद्राओं पर उत्खचित प्रतीकों, लेखो तथा अभिलेखों से इस तथ्य की पुष्टि होती हैं। शक--नरेशों के लेख भी इसके प्रमाण स्वरुप प्रस्तुत किये जा सकते हैं। रुद्रदामा का जूनागढ़ अभिलेख उसकी भारतीयता की प्रकृष्ट अभिरुचि का परिचायक है। सर्वाधिक ध्यातव्य तथ्य यह है कि शंक नरेशों की मुद्राओं पर भले ही प्राकृत भाषा में लेख उत्खचित हो किन्तु रुद्रदामा का जूनागढ़ अभिलेख परिमार्जित संस्कृत भाषा में लिपिबद्ध है। भारतीयता के प्रति उसके आकर्षण का ही परिणाम था कि उसने अपने पुत्र का भारतीय नामकरण रुद्रसिंह किया। रुद्रसिंह ने भी अपने पिता की अभिरुचि का अनुकरण किया तथा अपने अभिलेख में भारतीय काल गणना को ही स्थान दिया।[38] रुद्र सिंह के अन्य लेख[39] तथा रुद्रसेन की गहरा प्रशस्ति[40] में भी उक्त भांति की ही काल गणना प्राप्त होती है।

भारतीय अभिलेख तिथि निर्धारण एवं काल-गणना के लिए अति महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। जिस विक्रम संवत् का आरम्भ ई. पू. 57 में तथा शक संवत् का आरम्भ 78 ई. में हुआ था उसका ज्ञान हमें अभिलेखीय साक्ष्यों से ही होता है। इसके प्रमाण स्वरुप कुषाण वंशीया सम्राटों, नहपान, रुद्रदामा आदि नरेशों के अभिलेखों को प्रस्तुत किया जा सकता है। गुप्तकाल में गुप्तवंशीय नरेश द्वारा गुप्त-संवत् का आरम्भ किया गया था इसका परिज्ञान भी गुप्त तथा गुप्तेतर राजाओं के अभिलेखों से होता है। इसी भांति अनेक ऐसे भी अभिलेख प्राप्त हुए हैं जो राजाओं के वंशवृक्ष, उनके मूल स्थान, जाति, गोत्र आदि का बोध कराते हैं। संक्षेपतः भारतीय

इतिहास की पुर्नरचना में अभिलेखों की महत्ता सर्वोपरि है। इस तथ्य से भी नहीं नकारा जा सकता कि प्रशस्तिकार अपने सम्राट की प्रशंसा में अत्युक्ति का भी आश्रय ग्रहण करता था। अतः इतिहास के सत्यान्वेषण में अध्येता को वैज्ञानिक तथा तुलनात्मक पद्धति का आश्रय ग्रहण करना चाहिए। इस सत्यान्वेषण समसामयिक अन्य राजवंशों के अभिलेख, उक्त अभिलेख के अन्त साक्ष्यों की सभ्यक् समीक्षा तथा स्तर स्रोतों से उनकी संगति अत्यन्त सहायक होती है। इन्हीं तथ्यों के आलोक में अभिलेखों का अध्ययन अति महत्वपूर्ण होगा। अधीतकाल के अभिलेखों का सूक्ष्म विवरण देना भी आवश्यक प्रतीत होता है।

मौर्यकालीन अभिलेख :

प्राप्त अभिलेखों में प्राचीनता की दृष्टि से विद्वानों ने पिपरहवा बौद्ध अस्थिकलश अभिलेख को सर्व प्राचीन माना है। प्रारम्भिक मौर्यकालीन ब्राहनी में उत्खचित यह अभिलेख उत्तर-प्रदेश के बस्ती जिले की उत्तरी-पूर्वी सीमा पर स्थित पिपरहवा नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। यह अभिलेख दो पंक्तियों का संवहन करता है। प्रारम्भ में ब्यूहलर, स्मिथ, बार्थ, रीजडेविड्स आदि विद्वानों ने प्रथम पंक्ति को द्वितीय तथा द्वितीय पंक्ति को प्रथम माना था किन्तु कालान्तर में फ्लीट महोदय ने इसका क्रम सुस्थिर किया जो आज सर्वमान्य है। इस अभिलेख की भाषा प्राकृत तथा लिपि मौर्यकालीन ब्राह्मी प्रतीत होती है। अभिलेख में दीर्घ स्वरों के अभाव के कारण कतिपय विद्वानों की अवधारणा है कि यह अभिलेख प्राक् मौर्ययुगीन है किन्तु दिनेश चन्द्र सरकार महोदय इसे पुष्ट प्रमाण स्वीकार नहीं करते। उनका यह कथन है कि प्रारम्भिक अभिलेखों में दीर्घ स्वरों का प्रयोग प्रायः उपेक्षित पाया जाता है।[41] पुनः यह अभिलेख इतना संक्षिप्त है कि इसके आधार पर कोई काल सम्बन्धी अवधारणा नहीं व्यक्त की जा सकती है।[42] लिपि के आधार पर विद्वानों ने इसे तीसरी शताब्दी ई.पू. का स्वीकार किया है।

सोहगौरा कांस्य फलक अभिलेख उत्तर-प्रदेश के गोरखपुर जिले के बांसगांव

तहसील के सोहगौरा नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। प्रथमतः इसे कलकत्ता के एशियाटिक सोसाइटी में सुरक्षित किया गया था किन्तु आज यह अभिलेख अनुपलब्ध है। इस अभिलेख की भाषा प्राकृत तथा लिपि तीसरी शताब्दी ई.पू. की है। इस अभिलेख की प्रधान विशेषता यह है कि यह लेख सहित ढालकर तैयार किया गया था। कतिपय विद्वान इसे पूर्व अशोक कालीन स्वीकार करते हैं किन्तु इसे पूर्व अशोक कालीन स्वीकार करने के पर्याप्त प्रमाणों का अभाव है। अभिलेख की भाषा की अस्पष्टता के कारण ही इसके भाव ग्रहण करने के विषय में विद्वानों के बीच मत-वैभिन्नता है।[43]

बंगला देश के बोगरा जिले में स्थित महा स्थान नामक स्थान से एक खण्डित शिला फलक प्राप्त हुआ है जिसे महास्थान शिला फलक-लेख कहा गया है। यह अभिलेख प्राकृत भाषा तथा मौर्यकालीन लिपि में सात पंक्तियों का उद्वहन करता है। विद्वानों ने इसका काल तीसरी शताब्दी ई.पू. निर्धारित किया हैं। लेख की अस्पष्टता के कारण विद्वानों ने इसका भिन्न-भिन्न अनुवाद किया है। वर्तमान समय में लोग सरकार के अनुवाद के प्रति ही अधिक श्रद्धा व्यक्त करते हैं।

अशोक के अभिलेख :

अभिलेख उत्खचन के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान मौर्य सम्राट अशोक का है। अशोक ने ब्राहनी, खरोष्ठी, आरमेयिक तथा यूनानी लिपियों में अभिलेख उत्खचित कराये जो सम्पूर्ण भारत में प्रसरित प्राप्त होते हैं। इनमें ब्राह्मी लिपि में लिखे गये अभिलेखों की संख्या सर्वाधिक है। इस लिपि में लिखे गये अभिलेखों की संख्या 34 है किन्तु इन अभिलेखों की विभिन्न स्थानों से एकाधिक प्रतियां पायी गयी है इसलिए इनकी संख्या बढ़कर 163 तक पहुंच जाती है। खरोष्ठी लिपि के अभिलेख अफगानिस्तान तथा पाकिस्तान की राज्य-सीमा में पाये गये है। आरमेयिक लिपि में प्राप्त लेखों की संख्या 4 है जो तक्षशिला, लम्पाक, कन्दहार तथा लगमान से पाये गये हैं। कन्दहार या शेरकुन का लेख द्विभाषिक है।

इसमें आरमेयिक लिपि में लिखे गये लेख का यवन-लिपि में भी अन्तरण किया गया है। यवन लिपि में उत्खचित अशोक का एक अन्य लेख कन्दहार से भी मिला है। अशोक के अभिलेखों का अध्ययन वर्गीकरण के अभाव में अत्यन्त दुष्कर प्रतीत होता है। इन्हें शिलालेख, स्तम्भ लेख तथा गुहालेख की श्रेणियों मे विभक्त किया जा सकता है।, चूंकि भाब्रु लेख एक पाषाण-खण्ड पर उत्खचित पाया गया है, अतैव कतिपय विद्वान इसे शिलालेख की परिधि में ही परिगणित करते हैं। आकार एवं महत्व की दृष्टि से दो उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है-मुख्य शिला लेख (एक इडिक्ट्स) तथा लघु शिला लेख। इसी भांति स्तम्भ लेख को भी मुख्य स्तम्भ लेख तथा लघु स्तम्भ लेख में वर्गीकृत किया जाता है।

अशोक के मुख्य शिलालेखो की संख्या 14 है। ये चौदह लेख एक ही क्रम में एक साथ उत्खचित कराये गये थे जिनकी प्रतियां निम्नांकित पांच स्थानों पर प्राप्त होती हैं-

1- यह शिलालेख वर्तमान पाकिस्तान के पेशावर जिले की युसुफजई तहसील में मरदान से 9 मील दूर स्थित मकाम नदी के किनारे वसित शाहबाजगढ़ी नामक स्थान से प्राप्त होने के कारण शाहबाजगढ़ी शिलालेख कहा गया। इस शिलालेख का पता सन् 1836 ई. में कोर्ट नामक अंग्रेज ने लगाया था।[44] इस अभिलेख में प्रथम से एकादश शिलालेख शिला के पूर्वी भाग पर उत्खनित हैं। त्रयोदश तथा चतुर्दश भाग इसके पृष्ठभाग पर तथा द्वादश शिलालेख पृथक् शिला खण्ड पर उत्खचित हैं। इनकी लिपि खरोष्ठी है।

2- मानसेहरा शिलालेख पाकिस्तान स्थित हजारा जिले की मानसेहरा तहसील से प्राप्त हुआ है। ये लेख तीन शिलाओं पर उत्खचित हैं। प्रथम शिला पर प्रथम से लेकर अष्टम शिलालेख उत्खनित है। द्वितीय शिला पर नवम् से लेकर द्वादश शिलालेख तक का उत्टंकन है। इस दोनों शिलाओं की खोज जनरल कनिंधम महोदय ने की थी। तृतीय शिला खण्ड पर त्रयोदश तथा

चतुर्दश लेख का उत्खचन किया गया है जिसकी खोज पर त्रयोदश तथा चतुर्दश लेख का उत्खचन किया गया है जिसकी खोज 'पंजाब आर्क्योलाजिकल सर्वे' के एक अधिकारी ने की थी।[45] इनकी लिपि खरोष्ठी है।

3- कालसी शिलालेख उत्तर-प्रदेश के देहरादून जिले में चकराता तहसील अन्तर्गत स्थित कालसी नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। यह शिला खण्ड यमुना तथा टौंस नदियों के संगम पर स्थित है। यह शिलालेख 1860 ई. में प्रकाश में आया। इसके अन्वेषक फारेस्ट महोदय हैं। इसकी लिपि ब्राह्मी है।

4- गिरनार शिलालेख आधुनिक गुजरात के जूनागढ़ (प्राचीन गिरिनगर) से लगभग 1 मील दूर गिरनार की पहाड़ी में उत्खनित है। इसी शिला खण्ड पर महाक्षत्रप रुद्रदामा (150 ई.) तथा स्कन्दगुप्त (456-57 ई.) के लेख भी उत्खचित हैं। इस अभिलेख को सन् 1822 ई. में प्रकाश में लाने का श्रेय कर्नल टाड महोदय को है। इसकी लिपि ब्राह्मी है।

5- एर्रगुडी शिलालेख आन्ध्र प्रदेश के कुर्नूल जिले के एर्रगुडी नामक गांव से प्राप्त हुआ है। यहां पत्थरों के छः टीलों पर अशोक के शिलालेख तथा लघु शिला लेख उत्खचित पाये गये हैं। इनके अन्वेषण का श्रेय 1929 ई. में श्री अनुघोष महोदय को प्राप्त हुआ। ये ब्राह्मी लिपि में उत्खचित हैं।

इन अभिलेखों के प्रथम दस तथा चतुर्दश लेख उड़ीसा प्रान्त के भुवनेश्वर के निकट धौली जिसे प्राचीन काल में तोसली कहा गया है, से तथा गंजाम जिला अन्तर्गत जौगढ़ में एक साथ उत्खनित प्राप्त हुए हैं। इन दोनों स्थानों पर एकादश, द्वादश और त्रयोदश अभिलेखों के स्थान पर दो अन्य अभिलेख उत्खचित मिले हैं जिन्हें कलिंग अभिलेख से अभिहित किया गया। बम्बई के निकट सोपारा नामक स्थान जिसे प्राचीन काल में शूर्पारक कहा जाता था के भातेला-पोखर और भुइगाम नामक स्थानों से प्राप्त दो भिन्न काल की चट्टानों पर क्रमशः अष्टम एवं नवम् लेख का अंकन किया गया है। विद्वानों का अनुमान है कि प्रारम्भ में यहां

चतुर्दश अभिलेख की समस्त प्रतियां उत्टंकित रही होंगी।[46] कन्दहार से यवन-लिपि में प्राप्त अभिलेख में एकादश लेख के अन्तिम तथा त्रयोदश लेख के प्रारम्भिक अंश मात्र प्राप्त होते है।

अब तक अशोक के 15 लघु शिलालेख विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुए हैं। इन अभिलेखों में भाषा-विषयक सूक्ष्म अन्तर तो दृष्टिगत होता है किन्तु विषय-वस्तु में पूर्ण साम्य है। एर्रगुडी का लघु शिला लेख उसी स्थान से प्राप्त है जहां से मुख्य शिला लेख प्राप्त हुआ है। यह लेख चौदह शिलालेखों के क्रम में एक स्वतन्त्र चट्टान पर मिला है। एक लघु शिला लेख आन्ध्र प्रदेश के कुर्नूल जिले के अन्तर्गत पट्टीकोण्डा तालुका स्थित राजुल मण्डगिरि में राम लिंगेश्वर की चट्टान पर उत्खचित है। सन् 1882 ई. में बी. एल. राइस को मैसूर स्थित ब्रह्य गिरि, सिद्धपुर तथा जटिंग रामेश्वर की शिलाओं पर तीन लेख उत्खचित मिले जिन्हें ब्रह्यगिरि शिला लेख, सिद्धपुर शिला लेख तथा जटिंग रामेश्वर शिलालेख कहा गया। इनमें बह्यगिरि लघु शिलालेख सर्वाधिक सुरक्षित है। मैसूर राज्य के रामचुर जिले के अन्तर्गत स्थित गवीमठ और पालकी गुण्ड नामक स्थानों से भी अशोक के लघु शिला लेख प्राप्त हुए हैं। मैसूर राज्य के रामचुर जिले के ही मास्की नामक स्थान से, जिसे प्राचीन काल में मोसंगी कहा जाता था, अशोक का एक लघु शिलालेख प्राप्त हुआ है। इस अभिलेख की खोज सन् 1915 ई. में बोडन नामक इंजीनियर ने की थी। वर्तमान बिहार प्रान्त के रोहतास जिले के सहसराम नामक नगर के दो मील पूरब स्थित चन्दर पीर की पहाड़ी पर एक खोह में अशोक का एक लेख अंकित है जिसे सहसराम लघु शिलालेख कहा गया। रुपनाथ लघु शिलालेख मध्य प्रदेश में जबलपुर से कटनी जाने वाले मार्ग पर सलीमा बाद रेलवे स्टेशन से 14 मील पश्चिम की ओर स्थित है। गुजर्रा लघु शिला लेख मध्य प्रदेश के दतिया जिले में गुजर्रा नामक गांव से प्राप्त हुआ है। इसके अन्वेषण का श्रेय बहादुर चन्द्र छाबड़ा को प्राप्त है। मध्य प्रदेश के सिहोर जिले में बुधनीत तहसील स्थित पाड़.गुरारिया ग्राम के निकट एक गह्वर से भी अशोक का एक लघु शिला लेख प्राप्त हुआ है। वैराट लघु शिला लेख

सन् 1971-72 ई. में कार्लाइल ने राजस्थान में जयपुर नगर से 42 मील उत्तर-पूरब की ओर स्थित वैराट नामक स्थल से प्राप्त किया था। यह शिलालेख जिस पहाड़ी के नीचे उत्खचित है, उस पहाड़ी को 'भीम की डूंगरी' अथवा 'महादेव की डूंगरी' के नाम से जाना जाता है। उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले के अहरौरा ग्राम से एक लघु शिलालेख प्राप्त हुआ है जिसे अहरौरा लघु शिला लेख कहा गया है। इस लेख की खोज सन् 1961 ई. में जी.आर. शर्मा के नेतृत्व में प्रयाग विश्वविद्यालय के अन्वेषक दल ने किया था।[47] दिल्ली नगर के अमरपुरी कालोनी के एक चट्टान से एक लघु शिलालेख प्राप्त हुआ है जिसे नई दिल्ली लघु शिला लेख कहा गया है। इस शिलालेख की ओर सर्वप्रथम दिल्ली के एक ठेकेदार जंग बहादुर सिंह ने ध्यान आकृष्ट किया। सितम्बर 1966 में जी0ए0 धई ने सर्वप्रथम इसकी एक प्रतिलिपि तैयार की तथा दिनेश चन्द्र सरकार महोदय ने इसे सम्पादित किया।

भाब्रु नामक स्थान से अशोक का एक शिला फलक अभिलेख भी प्राप्त हुआ है। यह शिला फलक कप्तान बर्ट को जयपुर डिवीजन से मिला था। प्रथमतः बर्ट महोदय ने इसका जो प्राप्ति स्थल निर्धारित किया वह भ्रामक था। कालान्तर में भण्डारकर महोदय ने इसका सही प्राप्ति स्थल बैराट निर्धारित किया। चूंकि आज यह लेख कलकत्ता संग्रहालय में सुरक्षित है, अतैव इसे कलकत्ता बैराट लेख कहा जाता है। राजबली पाण्डेय प्रभृत विद्वान इसे भी लघु शिलालेख की परिधि में परिगणित करते हैं।[48] यह शिला फलक 2 फुट लम्बी तथा इतनी ही चौड़ी है। आज अधिकांश विद्वान इसे शिला फलक अभिलेख ही स्वीकार करते हैं।[49]

जिस भांति अशोक के अभिलेख पर्वतीय चट्टानों पर मिले हैं, उसी भांति उसके अनेक अभिलेख प्रस्तर-स्तम्भों पर भी उत्खनित पाये गये है। इन प्रस्तर स्तम्भों को भी दो उपवर्गों में विभाजित किया गया है- स्तम्भ लेख तथा लघु स्तम्भ लेख। स्तम्भ लेखों में प्रथम देहली-टोपरा स्तम्भ लेख है जो हल्के गुलाबी रंग के बलुए प्रस्तर स्तम्भ पर उत्खचित है। मध्य कालीन इतिहासकार शम्स-ए-सिराज

की अवधारणा है कि यह स्तम्भ लेख टोपरा जिसे टोब्रा, तोपेरा, तोहेरा आदि भी कहते हैं, नामक गांव में स्थित था। वहां से फिरोजशाह तुगलक इसे 42 पहियों की गाड़ी पर दिल्ली लाया तथा फिरोजशाह के तिमञ्जिले कोटले के अहाते में खड़ा किया गया। इसे भीम सेन की लाट, फिरोजशाह की लाट, सुनहरी लाट, दिल्ली शिवालिक लाट के नाम से भी जाना जाता है। इस स्तम्भ पर अशोक के सात लेख प्राप्त होते हैं जिनमें 6 लेखों की समता अन्य 5 स्थानों पर प्राप्त लेखों से है किन्तु सातवां लेख सर्वथा भिन्न है। इसी स्तम्भ पर चाहमान नरेश वीसलदेव तथा मध्य कालीन यात्रियों के अभिलेख भी उत्खचित पाये गये हैं। इसका उद्वाचन प्रिंसेप महोदय ने किया था।

दिल्ली मेरठ स्तम्भ लेख मूलतः मेरठ में विद्यमान था। शम्स-ए-सिराज के अनुसार इसे भी फिरोजशाह तुगलक ही दिल्ली लाया था तथा एक पहाड़ी पर स्थापित करवाया था। 18वीं शताब्दी के आरम्भ में बारूदखाने में आग लग जाने के कारण यह स्तम्भ पांच टुकड़ों में बिखर गया। कालान्तर में ब्रिटिश शासनकाल में इन्हें पुनः क्रमशः सम्पृक्त कर मूल स्तम्भ का रुप प्रदान किया गया तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के समीप जीतगढ़ नामक स्थान पर खड़ा किया गया। इसका एक भाग आज भी ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित है।

प्रयाग स्तम्भ लेख वर्तमान समय में प्रयाग के किले में स्थापित है। पहले इस अभिलेख को 'भीमसेन की गदा' के नाम से जाना जाता था। यह अभिलेख 35 फुट ऊंचे एक वृत्ताकार अखण्ड बालुकाश्म स्तम्भ पर उत्खचित है।[50] विद्वानों का अनुमान है कि यह अभिलेख मूलरुप से कौशाम्बी में स्थापित था। उनकी इस मान्यता का आधार कौशाम्बी के महामात्रों को अशोक द्वारा दिया गया आदेश है। कालान्तर में यह किसी मुसलमान शासक द्वारा नदी (यमुना) मार्ग से इलाहाबाद अन्तरित किया गया। इस अभिलेख को सर्वप्रथम कैप्टन ए0 ट्रायर ने सन् 1834 ई. में प्रकाशित किया।[51] लौरिया अरेराज स्तम्भ बिहार प्रान्त के चम्पारन जिले के

रधिया ग्राम के निकट से प्राप्त हुआ है। यह आज भी अरेराज नामक स्थल पर अपने मूलरुप में खड़ा है। लौरिया नन्दनगढ़ स्तम्भ अपने मूलरुप में चम्पारन जिले मठिया नामक ग्राम के निकट स्थित है। बिहार के ही चम्पारन जिले में रामपुरवा नामक स्थान से एक स्तम्भ मिला है जिसे राम पुरवा स्तम्भ लेख कहा जाता है। इसको प्रकाश में लाने का श्रेय कार्लाइल महोदय को है। यह स्तम्भ सिंह शीर्ष युक्त था। वर्तमान समय में यह स्तम्भ अपने मूल स्थान पर खड़ा न होकर गिरा हुआ है। इन समस्त स्तम्भों पर समान रुप से समान क्रम में 6 लेख उत्खचित पाये जाते हैं। दिल्ली-टोपरा-स्तम्भ पर एक सातवां लेख उत्खचित पाया जाता है। इस भांति उसके समस्त स्तम्भ लेखों की संख्या 7 सुनिश्चित होती है।

उपर्युक्त स्तम्भ अभिलेखो के अतिरिक्त अशोक के 6 लघु स्तम्भ लेख भी पाये जाते हैं। इनमें तीन प्रयाग लघु स्तम्भ लेख सांची लघु-स्तम्भ लेख तथा सारनाथ का लघु-स्तम्भ-लेख का वर्ण्य-विषय समान (संध-भेद) है। प्रथम का आदेश कौशाम्बी के महायात्रों के लिए है। यह लेख उसी स्तम्भ पर उत्कीर्ण है जिस पर उसका मुख्य स्तम्भ लेख उत्खचित है। सांची का लघु स्तम्भ लेख भिलसा (प्राचीन विदिशा) से 6 मील की दूरी पर स्थित है। यह स्तम्भ लेख खण्डित रुप में प्राप्त हुआ है। सारनाथ-लघु-स्तम्भ-लेख वाराणसी से 4 मील दूर स्थित प्रसिद्ध बौद्ध स्थल सारनाथ से मिला है। चतुर्थ लघु-स्तम्भ-लेख रानी का स्तम्भ-लेख कहा जाता है जो प्रयाग के किले में स्थित स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। पांचवा स्तम्भ लेख रूम्मिन देई स्तम्भ लेख है जो नेपाल की तराई में स्थित रूम्मिन देई नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। इसकी खोज का श्रेय फ्युहरर महोदय को प्राप्त है। छंठा लघु-स्तम्भ-लेख निगाली सागर लघु स्तम्भ लेख है। यह अभिलेख नेपाल की तराई स्थित निगाली सागर के तट से प्राप्त हुआ है। इसकी खोज 1815 ई. में फ्युहरर महोदय ने की थी।

अशोक के कतिपय गुहालेख भी प्राप्त हुए हैं। दक्षिण बिहार के गया जिले

से 15 मील दूर बराबर की पहाड़ी में उत्खनित गुफाओं से प्राप्त हुए हैं। तक्षशिला से आरमेइक लिपि में उत्खचित अशोक का एक भग्न अभिलेख मिला है जो अत्यन्त भग्न है। अशोक का शार-ए-कुना लेख दक्षिणी अफगानिस्तान के कन्दरहार के पास शार-ए-कुना से मिला है जो द्विभाषिक है। इसका आरमेइक संस्करण यूनानी संस्करण का स्वतन्त्र भाषान्तर प्रतीत होता है। अशोक का पुलेदारून्त आरमेइक प्रस्तर लेख अफगानिस्तान के पुलेदारून्त (प्राचीन लम्पाक) से प्राप्त हुआ है। इस लेख का सर्वप्रथम उल्लेख हेनिंग ने किया था।[52] यद्यपि इसकी भाषा प्राकृत है तथापि इसमें गान्धारी प्राकृत का प्रभाव परिलक्षित होता है।

प्राप्त अशोक के अभिलेखों में अशोक का उल्लेख देवानांप्रिय और प्रियदर्शी के रुप में किया गया है। चूंकि देवानांप्रिय उपाधिधारी अनेक राजा हुए है अतैव प्रारम्भ में देवानां प्रिय के तादात्म्य के विषय में विद्वानों में मतैक्य न था। मास्की अभिलेख में 'देवानांप्रियस असोकस' तथा गुजर्रा अभिलेख में 'देवानांप्रियस पियदसिनो अशोक राजस' लेख प्राप्त होने के बाद यह विवाद निर्मूल हुआ। प्राप्त अभिलेखों के अन्तः साक्ष्यों से ज्ञात है कि ये अभिलेख अशोक के शासन के 8वें वर्ष से 27वें वर्ष के मध्य उत्कीर्ण कराये गये थे। यद्यपि अशोक के अभिलेखों का मुख्य उद्देश्य धर्म का प्रतिपादन था तथापि इससे अशोक की साम्राज्य सीमा, शासन-व्यवस्था, अन्तर्राज्य सम्बन्ध, उसके धार्मिक एवं सामाजिक कार्य, प्रजा के प्रति उसके व्यवहार राजा के कर्तव्य, लोक हितकारी कार्य आदि का भी ज्ञान प्राप्त होता है जिनका उल्लेख यथास्थान ही मुक्ति युक्त पूर्ण होगा।

अशोक के अतिरिक्त अशोक के पौत्र दशरथ के तीन लेख प्राप्त हुए हैं जो नागार्जुनी पर्वत की नागार्जुनी पहाड़ी से प्राप्त हुए हैं। इन लेखों से ज्ञात होता है कि इन गुहाओं को दशरथ ने आजीवक सम्प्रदाय को दान किया था। इन अभिलेखों की लिपि अशोक के अभिलेखो की लिपि से पूर्ण साम्य रखती है।[53] इन अभिलेखों से दशरथ की ऐतिहासिकता एवं आजीवन सम्प्रदाय की महत्ता का बोध होता है।

मौर्योत्तर कालीन अभिलेख :

मौर्योत्तर युगीन अभिलेखों में बेसनगर गरूड़ ध्वज अभिलेख प्रथम है। यह अभिलेख मध्य प्रदेश में विदिशा से कुछ दूर स्थित बेसनगर मे एवं शिला स्तम्भ पर अंकित मिला है। इस अभिलेख की भाषा प्राकृत है जो संस्कृत से प्रभावित तथा लिपि ब्राह्मी है। इसअभिलेख की लिपि को सामान्यतः ईसा-पूर्व की दूसरी शती माना जाता है किन्तु दिनेश चन्द्र सरकार इसकी तिथि ई.पू. दूसरी शती का अन्त स्वीकार करते हैं।[54] राजनीतिक तथा धार्मिक इतिहास की दृष्टि से यह अभिलेख अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि उत्तर-पश्चिमी प्रदेश के यवन शासक मध्य प्रदेश के भारतीय राजाओं के साथ मैत्री-सम्बन्ध के इच्छुक थे। इस अभिलेख से वैष्णव धर्म के इतिहास तथा तत्कालीन वैष्णव धर्म की स्थिति पर भी प्रकाश पड़ता है।

भरहुत मध्य प्रदेश के नागौद जिले स्थित एक स्थान है। इसे बरहुत अथवा भड़ौत नाम से भी पुकारा गया है। इस स्थान से कनिंघम महोदय को एक विशाल स्तूप के अवशेष प्राप्त हुए हैं। ध्वंसावशेष के प्राप्त कतिपय भाग इण्डियन म्यूजियम कलकत्ता में संरक्षित हैं। यहां से प्राप्त एक तोरण पर एक लेख अंकित है जिसे भरहुत-तोरण अभिलेख की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। दिनेश चन्द्र सरकार ने लिपि के आधार पर इसे ईसा-पूर्व प्रथम शताब्दी के उत्तरार्द्ध का स्वीकार किया हैं। इसकी भाषा प्राकृत एवं लिपि ब्राह्मी है। इस अभिलेख में गार्गी पुत्र विश्वदेव, गोती पुत्र अग्रराज, वात्सी पुत्र, धनभूति आदि शुंग वंशीय सम्राटों के नामोल्लेख मिलते है। पुनः इस अभिलेख से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि स्तूप-निर्माण तथा अभिलेख के उत्खचन के समय यहां शुंगों की सत्ता विद्यमान थी। इससे सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह ज्ञात होता है कि शुंग बंश के संस्थापक पुष्य मित्र शुंग का बौद्ध धर्म के बारे में क्या दृष्टिकोण था।

राजस्थान के चित्तौडगढ़ हाथीबाड़ा नामक स्थान (आधुनिक नगरी गांव)

से एक अभिलेख प्राप्त हुआ है जिसे घोसुण्डी या हाथीबाड़ा अभिलेख कहा जाता है। इस गांव के पूरब दिशा में 296 फुट 10 इंच लम्बा तथा 151 फुट चौड़ा बाड़ा विद्यमान था जो अब क्षतिग्रस्त हो गया है। इसका प्राचीन रुप नारायण वाटिका का था। कहा जाता है कि मुगल सम्राट अकबर ने जब यहां चढ़ाई की थी तो उसकी सेना ने इसी स्थल पर पड़ाव डाला। नारायण वाटिका का उपयोग हाथीखाने के रुप में किया गया। तब से अद्यतन इसे हाथीबाड़ा की संज्ञा से ही अभिहित किया जाता है। अहाते की दीवार के बाह्य पार्श्व मे तीन प्रस्तर–खण्डों पर एक ही लेख उत्खचित किया गया था। ये प्रतियां आज खण्डितावस्था में विद्यमान हैं। एक प्रति अद्यतन हाथीबाड़े की दीवार से ही संश्लिष्ट है जिसकी ओर सर्वप्रथम एन0सी0 चक्रवर्ती ने ध्यान आकृष्ट किया था। दूसरी प्रति नगरी गांव से 6 मील दूर घोसुण्डी से तथा तीसरी प्रति हाथीबाड़ा से निकालकर घोसुण्डी ग्राम सीमा पर लगी मिली है। इस अभिलेख की भाषा संस्कृत, लिपि प्रथम शताब्दी ई. की ब्राह्मी है।[56] इस अभिलेख की प्राप्ति से पूर्व संस्कृत में लिखा गया प्रथम अभिलेख रुद्रदामा का जूनागढ़ अभिलेख माना जाता था किन्तु इस अभिलेख की प्राप्ति के बाद उक्त मिथक निर्मूल हो गया।

वर्तमान उत्तर–प्रदेश के कौशम्बी जिले के निकट पभोसा नामक स्थान पर एक गुहा स्थित है। इसी गुहा की भित्तिका पर लेख उत्खचित है जिसे ऊदाक का पभोसा अभिलेख कहा गया है। इस अभिलेख की भाषा प्राकृत प्रभावित संस्कृत तथा लिपि ब्राह्मी है। लेख तिथि–विहीन है। इसके अन्तः साक्ष्यों के आधार पर फ्युरर ने इसका काल दूसरी अथवा प्रथम शताब्दी निर्धारित करने का प्रयास किया है।[57] यहां से दो लेख प्राप्त हुए हैं। प्रथम लेख जो आठ पंक्तियों का संवहन करता है गुफा के बाहर से तथा द्वितीय लेख जो तीन पंक्तियों का संवहन करता है गुफा के अन्दर से प्राप्त हुआ है। इन अभिलेखों का प्रथम प्रकाशन हार्नले महोदय ने 'जर्नल एण्ड प्रोसीडिंग्स आफ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल' में किया

था।[58] इन अभिलेखों से ऊदाक्त तथा शौनकामनी पुत्र बंगपाल, उसके पुत्र त्रैवर्णी पुत्र भागवत तथा भागवत के पुत्र वैदिहरी पुत्र आषाढ़ सेन का नामोल्लेख प्राप्त होता है।

राजस्थान के बड़ली नामक स्थान से भी एक अभिलेख प्राप्त है। इस अभिलेख की भाषा प्राकृत तथा लिपि ब्राह्मी है। यह अभिलेख अत्यधिक खडितावस्था में मिला है। गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा[59] तथा राजबली पाण्डेय[60] प्रभृत विद्वान इस अभिलेख में महावीर संवत् 84 का उल्लेख स्वीकार करते हैं तथा यह धारणा व्यक्त करते हैं कि यह लेख पांचवी शताब्दी ई.पू. में उत्खचित कराया गया था। इसके विपरीत दिनेश चन्द सरकार इसमें किसी तिथि का अंकन स्वीकार नहीं करते। उनका यह भी कथन है कि अभिलेख की लिपि इतनी प्राचीन नहीं हो सकती।[61] यह अभिलेख मात्र चार पंक्तियां धारण करता है जो पाषाण के तीन ओर उत्खचित पायी गयी हैं।

अपने वर्ण्य-विषय तथा आनुपातिक अंक्षुण्णता के कारण मौर्योत्तर अभिलेखों में खारवेल के हाथी गुम्फा अभिलेख की विशेष महत्ता है। यह अभिलेख उड़ीसा में भुवनेश्वर के समीपस्थ उदयगिरि पर्वत श्रृंखला के दक्षिणी भाग में एक प्राकृतिक गुफा में जिसे लेख उत्खचन के पूर्व किंचित् संस्कारित किया गया था उत्कीर्ण है जो सप्तदश पंक्तियों का संवहन करता है तथा 84 वर्ग फुट क्षेत्र में प्रसरित है। लेख अतैथिक तथा ब्राह्मी लिपि में उत्खचित है। सर्वाधिक विवाद इसके तिथि-निर्धारण के विषय में है। विद्वानों का एक वर्ग इसे दूसरी शताब्दी ई.पू. में उत्खचित मानता है तो दूसरा वर्ग जिसके अनुयायियों की संख्या प्रथम से अधिक है इसे प्रथम शताब्दी ई. पू. के अन्तिम दशको की कृति स्वीकार करता है। दिनेश चन्द्र सरकार का अभिमत है कि लिपिशास्त्रीय आधार पर इसे सातवाहन नरेशो के नानाधाट अभिलेखों तथा हेलियोडोरस के बेसनगर अभिलेख का किंचित् अवान्तर कालीन स्वीकार करना चाहिए। यद्यपि इसकी भाषा प्राकृत प्रभावित है

तथापि लयात्मकता से युक्त है। इसे प्राचीनतम राज-प्रशस्ति कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। इस अभिलेख में राजा खारवेल के सूक्ष्म वंश-वृक्ष के बाद उसके जीवन चरित एवं उपलब्धियों का क्रमिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। संक्षिप्त तथा सूत्रात्मक शैली में निबद्ध इस अभिलेख के रचयिता का नामोल्लेख प्राप्त नहीं होता। इस विषय में काशी प्रसाद जायसवाल का अनुमान है कि इसका रचयिता खारवेल का कोई उच्च एवं वयोवृद्ध अधिकारी रहा होगा जो खारवेल के प्रारम्भिक जीवन से लेकर अभिलेख उत्खचन के समय तक की प्रत्येक धटनाओं से परिचित रहा होगा।[63] इस अभिलेख से खारवेल के जीवन चरित के अतिरिक्त उसकी साम्राज्य-सीमा पर स्थित राज्यों का भी बोध होता है। अन्य राज्य-वंशों से उसके राजनीतिक सम्बन्धों तथा उसकी धार्मिक रुचियों का भी बोध इस अभिलेख से प्राप्त होता है।

खारवेल की अग्रमहिषी का एक लेख मञ्चपुरी गुहा से प्राप्त हुआ है। यह अभिलेख उड़ीसा के ही पुरी जिले की उदय गिरि खण्ड गिरि की एक गुफा से जिसे मञ्चपुरी कहा जाता है मिला है। इसकी भाषा प्राकृत तथा लिपि ब्राह्मी है। लिपिशास्त्रीय दृष्टि से इसकी वर्ण-संरचना हाथी गुफा अभिलेख की वर्ण-संरचना से पूर्ण साम्य रखती हैं, अतः इसका काल भी प्रथम शताब्दी ई.पू. ही निर्धारित किया जाता है।[64] यद्यपि इस अभिलेख मे किसी तिथि का उत्खचन नहीं है तथापि इसके उद्देश्य-जैन भिक्षुओं के लिए गुफा निर्माण का उल्लेख इसमें किया गया है।[65]

महामेधवाहन वंशीय नरेश कुडेप जिसे कतिपय विद्वान वक्रदेव कहते हैं, का एक अभिलेख उदयगिरि की उसी गुफा से मिला है जहां से खारवेल की अग्रमहिषी का अभिलेख प्राप्त हुआ है। इस अभिलेख की भाषा प्राकृत है। यद्यपि लेख अतैथिक है तथापि लिपि शास्त्रीय दृष्टि से विद्वान इसे प्रथम शताब्दी ई.पू. के उत्तरार्द्ध में उत्खचित मानते है।[66] हाथीगुम्फा अभिलेख की भांति इस अभिलेख में राजा कुडेप को ऐर तथा महामेधनाहन कहा गया है[67] जिससे उसके महामेधवाहन

वंश का होने का बोध होता है। कुबेरक के काल के चार लेख मंजूषाओं पर अंकित मिले हैं जिन्हें भट्टिप्रोलु मज्जूषा अभिलेख कहा गया है। इसकी भाषा प्राकृत तथा लिपि द्वितीय शताब्दी ई.पू. की है।[68]

गुण्टूपल्ली अभिलेख आन्ध्र-प्रदेश के गोदावरी जिले के गुण्टूपल्ली नामक ग्राम में स्थित एक मण्डप से जो ध्वस्त हो चुका है प्राप्त हुआ है। मण्डप के चार स्तम्भों पर एक ही लेख उत्कीर्ण पाया गया है। प्राकृत भाषा तथा ब्राह्मी लिपि में एक स्तम्भ पर उत्खचित लेख पांच पंक्तियों का तथा शेष तीन स्तम्भों पर उत्खचित लेख छह पंक्तियों का संवहन करता है। अभिलेख का वर्ण्य-विषय दान है। इस लेख को प्रकाश में लाने का श्रेय आर0 सुब्रह्मण्यम को है। कालान्तर में इसका प्रकाशन डी.सी. सरकार ने किया। इस अभिलेख में कलिगाधिपति महामेधवाहन के लिए नवीन विरुद्ध माहिषकाधिपति का भी प्रयोग हुआ है। इससे यह ज्ञात होता है कि जिस समय यह अभिलेख उत्खचित कराया गया उस समय खारवेल के अधीन माहिषक भी था। इस लेख के उत्खाता तथा मण्डप के दानदाता चुलगोम का उल्लेख इसमें प्राप्त होता है। गुण्टूर जिले के वेल्पूर से एक पाषाण पर यह लेख उत्खचित पाया गया है। इस लेख में कुल 6 पंक्तियां हैं। लिखित स्थान का क्षेत्रफल 11 इंच x 12 इंच है। इस अभिलेख की भी भाषा प्राकृत है जिसके मात्र एक शब्द 'ऐरस के ऐ' पर संस्कृत का प्रभाव परिलक्षित होता है।[69] यह अभिलेख प्रशासन सम्बन्धी नवीन सूचना प्रदान करता है। अभिलेख से ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य की ओर से प्रमुख नगरों में ऐंसे राजकर्मचारी नियुक्त किये जाते थे जो वहां की घटनाओं एवं गतिविधियों की सूचना सम्राट को प्रेषित करते रहते थे।[70]

शुंग सम्राटों के अभिलेखों सर्वप्रमुख धनदेव का अयोध्या अभिलेख है जो उत्तर-प्रदेश के जनपद फैजाबाद के अयोध्या स्थित राणोपली (रानोपाली) मन्दिर के द्वार ललाट से प्राप्त हुआ है। अभिलेख की भाषा प्राकृत प्रभावित संस्कृत है तथा इसकी

लिपि प्रथम शताब्दी ई.पू. के उत्तरार्द्ध की है।[71] इस अभिलेख का उत्खाता धनदेव था जो शुंगवंश से सम्बद्ध था। अभिलेख में जिस स्थल पर धनदेव शब्द उत्कीर्ण है वह स्थल कुछ धूमिल हो गया है अतः 'देव' शब्द की पठ्यता अस्पष्ट एवं संदिग्ध हो गयी है किन्तु यह शब्द देव, मित्र, दत्त, भूति, नन्दि आदि ही हो सकता है। चूंकि इसका पितृ नाम फल्गुदेव है, अतः इसके नाम की धनदेव विषयक संभावना अधिक बलवती हो जाती है।[72] इस अभिलेख का सामान्य महत्व यह है कि इससे अयोध्या में शासन करने वाले एक वंश का उल्लेख प्राप्त होता है। यद्यपि यह अभिलेख अत्यन्त संक्षिप्त है तथापि राजनीतिक तथा धार्मिक दृष्टि से इसका अत्यन्त महत्व है। अभिलेख में शुंग-नरेश पुष्यमित्र को सेनापति कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि राज-सिंहासन-प्राप्ति के बाद भी वह सेनापति उपाधि ही धारण करता रहा।

अफगानिस्तान स्थित बाजौर के सभीपस्थ शिनकोट नामक स्थल से एक किले की नींव को उत्खनित करते समय एक पेटिका मिली थी जिसकी आकृति 8.8'' x 11.3'' x 1.9'' है। इस पेटिका पर दो लेख अंकित है जिसे शिनकोट मंजूषा अभिलेख कहते हैं। इन लेखों की भाषा प्राकृत तथा लिपि खरोष्ठी है। दोनों की लिपि में साम्य नहीं है। एक भांति के अभिलेख के अक्षर आकृति में बड़े तथा उनका उत्कीर्णन गहरा है जबकि दूसरी भांति के अभिलेख के अक्षर आकृति में छोटे हैं तथा उनका उत्कीर्णन कम गहरा है। इसी प्रकार प्रथम वर्ग के अभिलेख के कतिपय वर्ण अशोक कालीन ब्राह्मी अक्षरों से साम्य रखते हैं तो द्वितीय प्रकार के अभिलेख के कतिपय वर्ण कुषाण कालीन ब्राह्मी वर्णों से साम्य रखते हैं। प्रथम वर्ण के लेखों पर मीनेण्डर के शासन काल की तिथि अंकित की गयी थी जो अब क्षत हो गयी है तो दूसरे प्रकार के अभिलेख पर विजयमित्र के शासन काल की तिथि उत्खचित है।[73] प्रथम भांति का अभिलेख सूचित करता है कि मीनेण्डर का अधिकार स्वात घाटी पर था। इन अभिलेखों से मीनेण्डर के सामन्त शासक विजय मित्र का भी ज्ञान प्राप्त होता है।

स्वातधाटी में स्थित पठानों के एक गांव से सेलखडी निर्मित एक अस्थि-मंजूषा पर प्राकृत भाषा तथा खरोष्ठी लिपि में एक लघु-लेख प्राप्त हुआ है जिसे स्वात-घाटी--अस्थि-मंजूषा अभिलेख कहते हैं तथा जो वर्तमान समय में लाहौर संग्रहालय में सुरक्षित है। लिपिशास्त्रीय दृष्टि से इसका काल प्रथम शताब्दी ई.पू. प्रतीत होता है। अभिलेख यह सूचित करता है कि मेरिदर्ख थियोदोर नामधारी किसी यवन ने महात्मा बुद्ध के प्रति अपनी आस्था प्रकट करते हुए उनके अस्थि-अवशेष को प्रतिष्ठित करवाया था। मेरिदर्ख उपाधि के आधार थियोदोर स्वातधाटी तथा उसके आस-पास के क्षेत्र का प्रशासक प्रतीत होता है क्योंकि उक्त उपाधि का अर्थ जिलाधिकारी है।[74] इस अभिलेख से यह भी ध्वनित होता है कि भारतेतर निवासी भी महात्मा बुद्ध तथा बौद्ध धर्म के प्रति आकृष्ट हो रहे थे।

बाजौर क्षेत्र से एक अस्थि-मंजूषा प्राप्त हुई है जिस पर प्राकृत भाषा एवं खरोष्ठी लिपि में एक लेख अंकित है जिसके प्रथम पाठ का श्रेय सर हेराल्ड बेली को है।[75] विवेच्य अभिलेख अनेक दृष्टियों से अति महत्वपूर्ण है। प्रथमतः तो यह अभिलेख मंजूषा में महात्मा बुद्ध के देहावशेष को रखने की ओर संकेत करता है। पुनः संवत्सर के प्रसंग में महाराज अय का उल्लेख करता है। दूसरा अभिलेख तक्षशिला से प्राप्त एक मंजूषा के भीतर रखे रजत-पत्र पर अंकित है। इस पर भी अय का नाम उत्खचित है।

पतिक का तक्षशिला ताम्रलेख तक्षशिला के किसी भू-भाग से प्राप्त हुआ है। यह अभिलेख एक ताम्रपत्र पर उत्खचित पाया गया है जिसकी आकृति 14 इंच x 3 इंच है। यह ताम्रपत्र तीन टुकड़ों में विखण्डित है। वर्तमान समय में यह अभिलेख लन्दन के रायल एशियाटिक सोसाइटी में सुरक्षित है। इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि शक-नरेश पतिक ने भगवान शाक्यमुनि का अस्थि-अवशेष तथा संघाराम प्रतिष्ठित किया था। इससे न केवल शक-नरेशों में बुद्ध के प्रति श्रद्धा का भाव प्रकट होता है अपितु कतिपय राजनीतिक महत्व के तथ्य भी ज्ञात

होते हैं। अभिलेख में महाराज योग का नाम उत्खचित है जिसकी पहचान सिक्कों पर प्राप्त मोअ से की जाती है। अभिलेख में संवत् का भी उल्लेख प्राप्त होता है। यहां यह विचारणीय हो जाता है कि उल्लिखित संवत् योग का सवत् था अथवा पूर्व से चले आ रहे किसी संवत् का उल्लेख अभिलेख में किया गया है। इस अभिलेख में लियक कुपुल और पतिक नामक दो व्यक्तियों के उल्लेख है। लियक कुसुल को क्षहरात एवं क्षत्रप कहा गया है तथा पतिक को महादानपति विशेषण प्रदान किया गया है। इससे ऐसा भासित होता है कि अभिलेख उत्खचन के समय ये प्रशासनिक अधिकारी थे।

वर्तमान पाकिस्तान के पेशावर जिले के तख्तेबाही नामक स्थान से प्राकृत भाषा एवं खरोष्ठी लिपि में उत्खचित एक अभिलेख प्राप्त हुआ है तख्तेबाही अभिलेख कहा जाता है। कतिपय विद्वान इसका प्राप्ति स्थल शाहाबाद निर्धारित करते हैं। वस्तुतः तख्तबाही तथा शाहाबाद दोनों ही मर्दान तहसील में निकट ही स्थित है। यह लेख एक शिला–खण्ड पर मिला है जिसे सिल के रुप में पीसने हेतु प्रयोग किया जाता था। वर्तमान समय में यह अभिलेख लाहौर संग्रहालय में सुरक्षित है। चूंकि इस शिला खण्ड का प्रयोग पीसने के लिए किया जाता था अतः अभिलेख की तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम पंक्ति घिस गयी है। उनका पाठ संदिग्ध एवं आयासजनित हो गया है। अभिलेख में महाराज गुदुण्हर का उल्लेख प्राप्त होता है जो दक्षिणी अफगानिस्तान का पहलव शासक था तथा अपने राज्य का विस्तार सिन्धु धाटी तक किया था। गुदुण्हर के अनेक सिक्के भी प्राप्त हुए हैं जिसके आधार पर इसे अय का उत्तराधिकारी अनुमान किया जाता है। इस अभिलेख की प्रधान विशेषता यह है कि इसमें गुदुण्हर के राज्य वर्ष तथा एक अन्य संवत्सर का उल्लेख साथ–साथ प्राप्त होता है किन्तु इस संवत्सर की प्रारम्भिक तिथि अद्यतन सुनिश्चित नहीं हो पायी है। अभिलेख का मुख्य वर्ण्य–विषय श्रद्धादान है। श्रद्धादान क्या था तथा किसे प्रदान किया गया था? इस विषय में विद्वान एकमत नहीं है।

उत्तर-प्रदेश के मथुरा से एक सिंह-स्तम्भ शीर्ष प्राप्त हुआ है जिस पर प्राकृत भाषा एवं खरोष्ठी लिपि में एक लेख उत्खचित है। यह अभिलेख अव्यवस्थित क्रम में उत्खचित है, अतः विद्वानों ने इसे क्रमबद्ध किया।[76] इस अभिलेख ज्ञात होता है कि महाक्षलय राजुल (रजुबुल) की अग्रमहिणी ने अपने कतिपय सम्बन्धियों के सहयोग से बुद्ध के अवशेष पर स्तूप का निर्माण कराया था। इससे यह भी ज्ञात होता है कि स्तूप एवं संघाराम को उसने सर्वास्तिवादिन सम्प्रदाय को भेंट किया था। अभिलेख में महाक्षलय राजुल के पुत्र क्षत्रय शोडास की प्रशस्ति भी उत्खचित है। अभिलेख में उदयन अजमित्र द्वारा सर्वास्तिवादिन भिक्षुओं को दिये गये गुहाविहार का उल्लेख भी प्राप्त होता है। अभिलेख में किसी व्यक्ति द्वारा स्तूप निर्माण का भी उल्लेख प्राप्त होता है। राजनीतिक दृष्टि से ज्ञात होता है कि उस समय मथुरा पर शकों का अधिकार था तथा महाक्षलय राजुल संभवतः मथुरा का प्रथम शक-नरेश था।

उत्तर-प्रदेश के मथुरा से लगभग सात मील पश्चिम मोरा नामक स्थान से एक पाषाण खण्ड पर जो एक कुएं की जगत पर लगा था, प्राकृत प्रभावित संस्कृत एवं ब्राह्मी लिपि में एक लेख उत्कीर्ण मिला है। अभिलेख गद्य-पद्य मिश्रित 6 पंक्तियों का संवहन करता है। अभिलेख की अन्तिम पंक्ति पूर्णतः अपठ्य है तथा तीसरी एवं चौथी पंक्ति के कतिपय अक्षर अपठ्य हैं। इस अभिलेख की प्रथम दो पंक्तियां गद्यात्मक हैं तथा शेष पंक्तियां भुजंगविजृम्भित छन्द में उत्खचित हैं।[77] इस अभिलेख को प्रकाश में लाने का श्रेय कनिंघम महोदय को प्राप्त है।[78] अभिलेख का सम्पादन फोगल ने किया।[78] यह अभिलेख राजूबुल के पुत्र शोडास के काल में उत्खचित कराया गया था। अभिलेख से ज्ञात है कि इस समय वृष्णियों के पूज्य पञ्चवीरों की प्रतिमा स्थापित की गयी थी।

शोडास के वर्ष 72 का मथुरा आयाग-पट्ट अभिलेख भी प्राप्त हुआ है। इस अभिलेख की भाषा प्राकृत प्रभावित संस्कृत तथा लिपि ब्राह्मी है। इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस समय मथुरा में जैनधर्म प्रचलित था। अभिलेख में उल्लिखित तिथि का सम्बन्ध किस संवत् से था? इस विषय में विद्वानों में वैमत्य है।

भारतीय पहलव नरेश गोन्दोफर्निज का एक लेख एक पाषाण खण्ड पर उत्कीर्ण मिला है जिसे तख्त-ए-बाही पाषाण अभिलेख कहा जाता है। जिस पाषाण-खण्ड पर यह अभिलेख उत्खचित है वह 17 इंच x 14.5 इंच आकार का है तथा वर्तमान समय में लाहौर संग्रहालय में सुरक्षित है। इस अभिलेख की भाषा प्राकृत तथा लिपि खरोष्ठी है। इस अभिलेख की प्रधान विशेषता यह है कि इसमें दो तिथियों का उत्खचन है। प्रथम उत्खचित तिथि 26 गोन्दोफर्निज के शासनकाल की प्रतीत होती है तथा द्वितीय उत्खचित तिथि 103 किसी संवत् की तिथि प्रतीत होती है। इस तिथि का सम्बन्ध किस सम्वत् से है? इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। इस अभिलेख से यह भी ज्ञात होता है कि गोन्दोफर्निज ने अपने शासन के 26वें वर्ष में पेशावर के भू-भाग पर अपना अधिकार कर लिया था। अभिलेख से यह भी ध्वनित होता है कि सन्त थामस गोन्दोफर्निज के दरबार में उपस्थित हुआ था तथा उसने गोन्दोफर्निज तथा उसके भाई को इसाई धर्म में दीक्षित किया था।[79]

सातवाहनों के अभिलेख :

सातवाहन नरेश दक्षिण भारत में महाराष्ट्र के भू-भाग पर शासन करते थे। यद्यपि क्षहरातों ने महाराष्ट्र के कुछ भू-भाग पर अपना अधिकार कर लिया था किन्तु जब सातवाहनों ने अपनी शक्ति की पुनर्स्थापना की तो एक सुदृढ़ एवं विशाल साम्राज्य अस्तित्व में आया। इस वंश के शासकों द्वारा अनेक अभिलेख उत्खचित कराये गये। इस वंश का प्राप्त सर्व प्रथम अभिलेख इस बंश के द्वितीय नरेश कृष्ण का है जो नासिक स्थित एक लयण से प्राप्त हुआ है तथा 'कृष्ण का नासिक-लयण--अभिलेख कहा जाता है। अभिलेख की भाषा प्राकृत तथा लिपि ब्राह्मी है। ब्यूहलर महोदय ने इसकी तिथि दूसरी शती ई. पू. का प्रथम चरण निर्धारित किया है[80] किन्तु राम प्रसाद चन्दा प्रभृत विद्वान इस अवधारणा के प्रति आपत्ति व्यक्त करते है। दिनेश चन्द सरकार का कथन है कि चूंकि अभिलेख के कतिपय वर्ण कोणाकार हैं, अतः यह अभिलेख ई.पू. प्रथम शताब्दी के उत्तरार्द्ध से

अभिलेख 6 पंक्तियों में उत्खचित है जो नासिक स्थित लयण सं. 3 के बरामदे के पूर्वी दीवार पर छत के निकट प्राकृत भाषा एवं ब्राह्मी लिपि में उत्खचित है। यह अभिलेख गौतमीपुत्र शातकर्णि के शासन के 18वें वर्ष का है। अभिलेख का मुख्य वर्ण्य-विषय त्रिरश्मि पर्वत के निवासी बौद्ध भिक्षुओं को दान दी गयी भूमि की घोषणा है। यद्यपि अब तक सातवाहनों को ब्राह्मण तथा वैदिक धर्म का अवलम्बी स्वीकार किया जाता था किन्तु इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि बौद्ध धर्म के प्रति भी उनकी श्रद्धा एवं अनुशक्ति थी। इस अभिलेख से भूमि पर राज्याधिकार एवं प्रशासनिक विद्या का भी ज्ञान प्राप्त होता है। गौतमीपुत्र शातकर्णि के शासन के 24वें वर्ष का भी एक लेख नासिक की गुहा सं. 3 से प्राप्त हुआ है। जिसे गौतमीपुत्र शातकर्णि का नासिक गुहालेख (वर्ष 24) कहा जाता है। यह लेख उसके 18वें वर्ष के लेख के ठीक बाद लिखा गया है। दोनों लेखों के मध्य उत्कीर्ण स्वस्तिक चिन्ह इनके मध्य पृथकता स्थापित करता है। अभिलेख की भाषा प्राकृत एवं लिपि द्वितीय शताब्दी ई. के प्रारम्भ की ब्राह्मी है। इस अभिलेख में भी भूमिदान का उल्लेख प्राप्त होता है। इसके साथ ही राजा द्वारा प्रेषित-पत्रों की विद्या का भी सम्यक् बोध इस अभिलेख से होता है। इस अभिलेख से सातवाहन युगीन भूमि-व्यवस्था तथा शासन-व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त होता है।[83] वासिष्ठीपुत्र पुलमावि का एक अभिलेख कार्ले गुहा से प्राप्त हुआ है जो उसके शासन के सातवें वर्ष का है। अभिलेख की भाषा प्राकृत तथा लिपि ब्राह्मी है। इसअभिलेख में भी बलुरक-संघ को दिये गये दान का उल्लेख प्राप्त होता है।[84]

सातवाहन नरेश वासिष्ठीपुत्र पुलुमाणि के शासन के 19वें वर्ष का एक अभिलेख नासिक की गुफा सं. 3 के बरामदे की पिछली दीवार पर प्रवेश द्वार के ऊपर उत्खचित मिला है। अभिलेख की भाषा प्राकृत तथा लिपि द्वितीय शताब्दी ई. की ब्राह्मी है।[85] यह अभिलेख मात्र एकादश किन्तु वृहद् पंक्तियों को धारण करता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह अभिलेख अत्यन्त महतवपूर्ण है। इस अभिलेख से सातवाहन नरेशों की साम्राज्य सीमा का बोध होता है। इससे यह भी ज्ञात होता

पूर्व का नहीं हो सकता।[81] परमेश्वरी लाल गुप्त ने लेख की तिथि निर्धारण में उस लयण की ओर ध्यान आकृष्ट किया है जिस लयण में यह अभिलेख उत्खचित है। उनका कथन है कि जिस लयण में अभिलेख उत्खचित है कलामर्मज्ञों की दृष्टि में यह लयण ई.पू. प्रथम शताब्दी के उत्तरार्द्ध की है। इस अभिलेख से सातवाहनों के काल–निर्धारण में सहायता मिलती है।

महाराष्ट्र पुणे जिले में कोंकण से जुन्नार जाने वाला एक दर्रा है जिसे नानाघाट गुहा कहा जाता है। इस दर्रे की दोनों दीवारों पर ब्राह्मी लिपि तथा प्राकृत भाषा में लेख उत्खचित है जिसे नानाघाट अभिलेख कहा जाता है। काल प्रभाव से यह अभिलेख इतना क्षतिग्रस्त हो गया है कि इसके पाठोद्धार में अनेक विसंगतियां उत्पन्न होती हैं। अभिलेख की प्रारम्भिक पंक्तियां विराम–चिन्हों का अभाव सूचित करती हैं जिसके कारण विद्वान इसके वाक्यों की सीमा अपने–अपने अनुसार निर्धारित करते हैं। इस अभिलेख में किसी रानी द्वारा अपने पति के साथ किये गये यज्ञों का वर्णन है। यह वह प्रथम अभिलेख है जिसमें सातवाहन नरेश को 'दक्षिणापथपति' कहा गया है तथा उसके चक्र को अप्रतिहत कहा गया है। पुणे जिले में ही कोंकण से जुन्नार जाने वाले मार्ग पर स्थित नानाघाट से एक लयण की भित्ति पर क्रमशः कुछ आकृतियां उकेरी गयी है। इन आकृतियों के ऊपर उनके नाम प्राकृत भाषा एवं ब्राह्मी लिपि में उत्खचित किये गये हैं। अतः इन्हें 'नानाघाट–लयण–मूर्ति–परिचय–पट्ट' कहा गया है। इन आकृति–पट्टों पर उत्कीर्ण नामों के आधार पर उनके पारस्परिक सम्बन्धों का बोध नहीं होता। मात्र द्वितीय आकृति में प्रयुक्त षष्ठी विभक्ति के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि यह उस राज–दम्पति की आकृति है जिसके शासनकाल में ये आकृतियां उत्कीर्ण की गयीं।[83] तदनुसार यह आकृति राजा शातकर्णि और उसकी रानी नयनिका की समझी जाती है।

गौतमीपुत्र शातकर्णि का नासिक गुहा–लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह

है कि सातवाहन नरेश ने नहपान को पराजित कर उसके दर्प को चूर कर दिया था। इस अभिलेख में भी भदायनी भिक्षु-संघ को दिये गये दान का उल्लेख किया गया है। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि सातवाहनों की जो शक्ति क्षीण हो गयी थी, उनकी राज्य-सीमा का जो संकुचन हो गया था उसकी पुनर्स्थापना एवं पुनर्विस्तार हुआ।

वासिष्ठी पुत्र पुलुमणि के शासन 22वें वर्ष का एक लेख नासिक की गुहा सं. 3 से प्राप्त हुआ है जिसे पुलुमाणि का नासिक गुहा लेख कहा जाता है। इस अभिलेख की भाषा प्राकृत एवं लिपि ब्राह्मी है। इस अभिलेख की प्रधान विशेषता है कि इसमें अनेक देशज शब्दों का प्रयोग किया गया है। अभिलेख से ज्ञात है कि पुलुमाणि के 19वें वर्ष में रानी की गुफा के जीर्णोद्धार के लिए जो गांव दान दिया गया था उसे तीन वर्ष बाद एक दूसरे गांव से बदल दिया गया।[86] महाराष्ट्र के पूना जिले में स्थित कार्लेगुहा से वासिष्ठीपुत्र पुलुमाणि के शासन के 24वें वर्ष का एक अन्य अभिलेख भी प्राप्त हुआ है जिसे वासिष्ठी पुत्र पुलुमाणि का कार्लेगुहा लेख कहा जाता है। इस अभिलेख की भाषा संस्कृत प्रभावित प्राकृत तथा लिपि ब्राह्मी है। इस अभिलेख में दये गये उपहार का वर्णन प्राप्त होता है।

सातवाहन नरेश यज्ञ श्री शातकर्णि का एक लेख नासिक स्थित लयण सं. 20 के बरामदे की दीवार पर अंकित है जो उसके शासन के 7वें वर्ष में उत्खचित कराया गया था। अतः इस अभिलेख को यज्ञश्री शातकर्णि का नासिक लयण अभिलेख (राज्य वर्ष 7) कहा जाता है। इस अभिलेख की भाषा प्राकृत तथा लिपि ब्राह्मी है। इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि स्वयं परिव्राजक भी लयण उत्खनन की भावोष्मा से युक्त हो चुके थे किन्तु आर्थिक विसंगति के कारण वे इसे मूर्तरुप देने में असमर्थ थे। अभिलेख में उल्लिखित ध्यातव्य तथ्य यह भी है कि महासेनापति की भार्या ने अपने आप को महासेनापति पत्नी कहा है। अब तक पति के पद अथवा विरुद्ध से मात्र राजा की पत्नी का ही उल्लेख होता था। इस भांति का उल्लेख राज्य-परम्परा का उल्लंघन है। विद्वानों का एक वर्ग यह स्वीकार करता है

कि यह इस तथ्य का सूचक है कि सेनापति प्रान्तीय राज्यपाल के रुप में भी नियुक्त होते थे। परमेश्वरी लाल गुप्त ने दूसरी संभावना की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा कि संभव है सेनापति की आर्या बसु स्वयं किसी नारी सेना की प्रधान रही हो और इस अधिकार से महासेना पत्नी कही जाती रही हो[88] किन्तु उनका यह भी कथन है कि अब तक किसी सूत्र से प्राचीन भारत में नारी–सेना का अस्तित्व प्रमाणित नहीं होता।[89]

जिला बेलारी के मयाकदोनि नामक स्थान से पुलुमाणि का एक अन्य अभिलेख भी प्राप्त हुआ है जो उसके शासन के आठवें वर्ष का है। इस अभिलेख की भाषा प्राकृत एवं लिपि ब्राह्मी हैं। इस अभिलेख में कुल पांच पंक्तियां हैं। विजय शातकर्णि का एक अभिलेख गुण्टर जिले के नागार्जुनी कोण्ड से मिला है। इस अभिलेख की भाषा प्राकृत तथा लिपि तीसरी शताब्दी ई. की ब्राह्मी है। यह अभिलेख विजय शातकर्णि के शासन के छठें वर्ष में उत्खचित कराया गया तथा मात्र 4 पक्तियां धारण करता है। इस अभिलेख में कोई विशेष ऐतिहासिक तथ्य उत्खचित नहीं है।

भारत के दक्षिण भाग से कुछ अन्य प्रमुख अभिलेख भी प्राप्त हैं जो सातवाहनों के समकालीन हैं। कुमारवीरदत्त का गुज्जी शिलालेख इसी भांति का है जो उसके शासन के पांचवे, छठे वर्ष का है। यह अभिलेख मध्य प्रदेश के रामगढ़ जिले के गुज्जी नामक स्थल से प्राप्त हुआ है। इसकी भाषा प्राकृत तथा लिपि प्रथम शताब्दी ई. के उत्तरार्द्ध की ब्राह्मी है।[90] आन्ध्र प्रदेश के श्री काकुलम् जिले के प्रसिद्ध बौद्ध स्थल शालिहुण्डम् से एक शिला फलक पर उत्कीर्ण एक लेख प्राप्त हुआ है जिसकी भाषा प्राकृत तथा लिपि द्वितीय शताब्दी ई. की ब्राह्मी है।[91] यह अभिलेख खण्डितावस्था में मिला है। गर्दे का कथन है कि इस अभिलेख में अशोक के धर्म लेख का उल्लेख प्राप्त होता है। अपने मत के समर्थन में गर्दे का कथन है कि अशोक ने चैत्रयों में स्मारको के रुप में शिला–यष्टियां लगवायी थीं। संभव है शालिहुण्डम् स्तूप मौर्य कालीन हो और कालान्तर में किसी बौद्ध श्रद्धालु ने शिलाफलक पर

लेख उत्खचित कराया हो तथा अशोक के धर्म का उल्लेख किया हो।[92] ए0 घोष महोदय इस मत में श्रद्धा नहीं रखते अपितु इसे अशोक की उपाधि स्वीकार करते हैं। इसी का अनुगमन सरकार महोदय भी करते हैं।[93] कुमार देवी के सारनाथ अभिलेख को छोड़कर मौर्योत्तरकालीन यह एक मात्र अभिलेख है जिसमें अशोक का नामोल्लेख प्राप्त होता है।

आन्ध्र प्रदेश के गुण्टूर जिले के नागार्जुनी कोण्ड से प्राकृत मिश्रित संस्कृत भाषा में ब्राह्मी लिपि में उत्खचित वसुषेण आभीर का एक अभिलेख मिला है जो उसके शासन के 30वें वर्ष का है। नागार्जुनी कोण्ड से ही वीरपुरुषदत्त के शासन के छठें एवं 18वें वर्ष के दो अभिलेख प्राप्त हुए हैं। इन दोनों अभिलेखों की भाषा प्राकृत तथा लिपि तृतीय शताब्दी ई. की ब्राह्मी है। नागार्जुनी कोण्ड पर्वत पर स्थित एक ध्वस्त स्तूप के आयक स्तम्भ पर एक लेख अंकित है जिसकी भाषा प्राकृत एवं लिपि दक्षिण भारतीय ब्राह्म है। अभिलेख में जो तिथि अंकित है वह रपुरिषदत्त के शासन का 11वां वर्ष है। इस अभिलेख से ज्ञात है कि इक्ष्वांकुओं ने आन्ध्रप्रदेश पर चौथी शताब्दी ई. तक शासन किया था। इक्ष्वांकुवंशीय नरेश वीर पुरुष दत्त की पत्नी ने नागार्जुनी कोण्डा स्थित स्तूप की मरम्मत करायी थी तथा शैल स्तम्भ स्थापित किया। इससे यह भी ज्ञात होता है कि उन दिनों वहां पर महावन शैल नामक एक बौद्ध नामक एक बौद्ध सम्प्रदाय था।[94]

कुषाण एवं क्षत्रप अभिलेख :

हिन्दूकुश की सीमा को आक्रान्त कर प्रथमतः दक्षिण के उन प्रदेशों पर अधिकार करने वाले जिन पर युक्रेटाइडीज के वंशजों का अधिकार था तथा कालान्तर में शनैः शनैः अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्य की स्थापना करने वाले कुषाणों के अनेक अभिलेख भारतीय तथा इतर भारतीय भू-भागों में प्राप्त होते हैं। इन अभिलेखों में कुषाण राज का पतंजर अभिलेख है। अभिलेख का अधोभाग खण्डित है जिससे तृतीय पंक्ति में उत्खचित लेख का अर्थ बोध नहीं हो पाता किन्तु द्वितीय

पंक्ति में उरभुजपुत्र मोमिक का उल्लेख है जिसने शिव स्थल का निर्माण करवाया था।[95] इस अभिलेख से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि उत्तर-पश्चिम प्रदेश में शैव धर्म प्रचलित था तथा कुषाण-शासक विमकदफिस शैव मतानुयायी था।[96] यह अभिलेख प्राकृत भाषा तथा खरोष्ठी लिपि में उत्खचित है।

सन् 1914 ई. में तक्षशिला-उत्खनन में सरजान मार्शल को धर्मराजिका स्तूप के पश्चिम स्थित चिर टिले से सेलखड़ी की एक मंजूषा प्राप्त हुई थी। इस मंजूषा के अन्दर रजत-निर्मित एक मंजूषा रखी गयी थी जिसमें एक रजत-पत्र तथा एक सोने की डिबिया थी। डिबिया में धातु (अस्थि) अवशेष विद्यमान थे तथा रजत-पत्र पर प्राकृत भाषा एवं खरोष्ठी लिपि में लेख अंकित था। इस अभिलेख से स्पष्ट होता है कि इस काल तक आते-आते बौद्ध धर्म में बोधिसत्व, बुद्ध तथा अर्हत की कल्पना साकार हो उठी थी। इस अभिलेख में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य बोधिसत्व गृह है। बौद्ध धर्म के अनुसार अस्थि-अवशेष मंजूषा में रखकर उसे सतूपों में प्रतिस्थापित किया जाता था किन्तु यह मंजूषा किसी स्तूप से नहीं वरन् एक कमरे में पीछे की दीवार के निकट जमीन में 1 फुट की गहराई में गोपित पायी गयी है जिससे सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि अस्थि-अवशेष स्तूप के अतिरिक्त कमरे में भी संरक्षित किये जाते थे। इसी कक्ष को बोधिसत्व-गृह की संज्ञा से अभिहित किया गया।[97] इससे स्पष्ट है कि बुद्ध क अस्थि-अवशेष स्तूप में रक्षित होते थे तथा बोधिसत्व के अस्थि-अवशेष बोधिसत्व गृह में रक्षित होते थे। इस अभिलेख का अन्य महत्वपूर्ण अंश 'महाराज रजतिराज देवपुत्र खुषण' है। यह कुषाणों की महत्वपूर्ण विरुद्ध है। 'खुषण' शब्द वस्तुतः 'कुषाण' शब्द का ही बोधक है।

वर्तमान उत्तर-प्रदेश के फतेहपुर जिले में रेह नामक स्थान से विम कदफिस कालीन एक अभिलेख प्राप्त हुआ है। यह लेख एक शिव लिंग पर अंकित है। शिवलिंग के अधोभाग के अनुपलब्ध होने के कारण अभिलेख की मात्र तीन पंक्ति

तथा चतुर्थ पंक्ति के कतिपय अक्षर ही प्राप्त है। इस अभिलेख के प्रकाशक जी. आर. शर्मा ने चतुर्थ पंक्ति का अनुमानित पाठ मिनन्द रस किया तथा इसे मिनेन्डर का अभिलेख सिद्ध करने का प्रयास किया जो वर्तमान में विद्वानों के मध्य अश्रद्धेय है। अफगानिस्तान के कामरा नामक स्थान से एक अभिलेख प्राप्त हुआ है जो वर्ण्य-विषय की दृष्टि से रेह अभिलेख से पूर्ण-साम्य रखता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उक्त अभिलेख कुषाण-नरेश का ही है। इस अभिलेख की महत्ता इस दृष्टि से भी है कि इससे स्पष्ट हो जाता है कि विम कडफिस के काल में ही कुषाणों का प्रवेश गंगा-यमुना के काँठे में हो चुका था।

कनिष्क प्रथम के शासन काल का एक अभिलेख सारनाथ से प्राप्त हुआ है जो बोधिसत्व की प्रतिमा तथा उसकी यष्टि पर उत्खचित है। लेख प्राकृत प्रभावित संस्कृत भाषा तथा ब्राह्मी लिपि में लिखा गया है। वर्तमान समय में यह अभिलेख सारनाथ संग्रहालय में सुरक्षित है। अभिलेख में कनिष्क के शासन के तीसरे वर्ष का उल्लेख है। इस अभिलेख को सर्वप्रथम फोगल महोदय ने प्रकाशित किया।[98] कालान्तर में दिनेश चन्द सरकार महोदय ने इसका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया।[99] इस अभिलेख के आधार पर विद्वानों का अनुमान है कि कनिष्क का राज्य वाराणसी तक विस्तृत था तथा महाक्षत्रय खरपल्लान एवं क्षत्रय वनस्पर यहां शासन करते थे किन्तु विद्वानों का एक वर्ग इस अवधारणा में श्रद्धा नहीं रखता क्योंकि यह अभिलेख भिक्षु-बल द्वारा तीर्थ यात्री के रुप में लाया गया था। उनका यह भी कथन है कि महाक्षत्रय खरपल्लान तथा क्षत्रय वनस्पर का उल्लेख लेख में मूर्ति तथा छत्र स्थापित करने वाले सहयोगी के रुप में किया गया है।[100]

कनिष्क के शासनकाल के दूसरे वर्ष में उत्खचित कराया गया एक अभिलेख इलाहाबाद के निकट कोसम से प्राप्त हुआ है। यह अभिलेख बोधिसत्व की प्रतिमा पर उत्खचित है जो वर्तमान समय में प्रयाग-संग्रहालय में सुरक्षित है। यह प्रतिमा सारनाथ प्रतिमा से साम्य रखती है। इसमें कनिष्क के शासन के दूसरे वर्ष का

उल्लेख है। इस अभिलेख की भाषा संस्कृत-प्रभावित प्राकृत तथा लिपि कुषाण कालीन ब्राह्मी है।[101] इस अभिलेख में मात्र दो पंक्तियां उत्खचित की गयी है।

उत्तर-प्रदेश के जनपद गोण्डा तथा जनपद बहराइच की सीमा पर स्थित श्रावस्ती (सहेत-महेत) नामक स्थान से बोधिसत्व की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है। यह प्रतिमा वर्तमान समय में इण्डियन म्यूजियम कलकत्ता में संग्रहीत है। प्रतिमा की पाद-पीठ पर तीन पंक्तियों का एक लेख अंकित है। अभिलेख की भाषा प्राकृत-प्रभावित संस्कृत तथा लिपि प्रारम्भिक कुषाण कालीन ब्राह्मी है। इस अभिलेख के उत्खचन का उद्देश्य कनिष्क के शासनकाल में भिक्षुबल द्वारा बोधिसत्व प्रतिमा एवं उसके छत्र तथा यष्टि का निर्माण और उन्हें श्राबस्ती के कौसम्बकुटी के चक्रम में स्थापित कराए जाने का उल्लेख करना है। अभिलेख में जिस स्थल पर तिथि का अंकन किया गया था वह काल-प्रवाह एवं प्राकृतिक प्रभाव से अस्पष्ट है। इस अभिलेख से यह स्पष्ट होता है सहेत-महेत श्रावस्ती ही था। अभिलेख में सर्वास्तिवादिन आचार्यों का उल्लेख प्राप्त होता है।

पाकिस्तान में बहावलपुर से 16 मील दक्षिण-पश्चिम में सुई-विहार नामक एक स्तूप के भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं। इस स्तूप के ध्वंसावशेष से एक वर्गाकार ताम्रपत्र प्राप्त हुआ है। इस ताम्रपत्र पर प्राकृत प्रभावित संस्कृत भाषा एवं खरोष्ठी लिपि में 4 पंक्तियां उत्खचित है। इसे कनिष्क का सुई विहार अभिलेख कहा जाता है जिस पर वर्ष 11 का उल्लेख है। लेख प्राकृत भाषा तथा खरोष्ठी लिपि में अंकित है। इस अभिलेख से स्तूप-निर्माण विषयक सामान्य सूचनाएं प्राप्त होती है। अभिलेख से ज्ञात होता है कि स्तूप-निर्माण हेतु दान तथा स्तूप का निर्माण पुण्य-लाभ के लिए था। अभिलेख से ज्ञात होता है कि अभिलेख और स्तूपों का निर्माता दण्डनायक लल था जो गुषण-वंश का था।[103] पाकिस्तान के पेशावर जिले के समीपस्थ कुर्रम नामक स्थान से एक ताम्र-मंजूषा प्राप्त हुई है जिस पर प्राकृत भाषा एवं खरोष्ठी लिपि में लेख अंकित है। इसे कुर्रम ताम्र मंजूषा अभिलेख कहा जाता है। लेख पर तिथि सं. 21

अंकित है। इससे इसकी उत्खचन तिथि 99 ई. निश्चित होती है। इस अभिलेख में शाक्यमुनि तथा सर्वास्तिवादियों का उल्लेख प्राप्त होता है। कनिष्क प्रथम के शासनकाल का एक अभिलेख मथुरा से प्राप्त है जो मूर्ति पर उत्खचित है तथा वर्तमान समय में मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। इस अभिलेख की भाषा संस्कृत से प्रभावित प्राकृत है तथा लिपि ब्राह्म है। इस अभिलेख में तिथि 23 का अंकन हैं जो शक-संवत् की तिथि मानी जाती है। इस अभिलेख में महाराज कनिष्क द्वारा बोधिसत्व की मूर्ति प्रतिष्ठित करने तथा सर्वसत्वों के हित एवं सुख की कामना का उल्लेख है।

हुविष्क का एक लेख मथुरा जिले में मथुरा से गोवर्धन जाने वाले मार्ग पर स्थित चौरासी मन्दिर के निकट एक कुएं से मिला है। यह लेख एक प्रस्तर-स्तम्भ पर अंकित है। सन् 1929 ई. में इसे मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित किया गया। अभिलेख की भाषा संस्कृत प्रभावित प्राकृत एवं लिपि ब्राह्मी है।[104] अभिलेख में शक संवत् की तिथि 28 उत्खचित है। अभिलेख में हुविष्क के लिए केवल देवपुत्र शाहि शब्द का प्रयोग किया गया है। महाराज विरुद्ध के अभाव के आधार पर विद्वानों का एक वर्ग यह अनुमान व्यक्त करता है कि अब तक हुविष्क सत्तारुढ़ नहीं हो पाया था। इस अभिलेख से ज्ञात है कि दान दाता ने अक्षय-नीति के रुप में 1100 पुराण दो श्रेंगियों के पास जमा किये थे। स्टेन कोनोव के अनुसार अक्षय-नीति के साथ पुण्यशाला का भी दान किया गया था[105] किन्तु इस भांति का कोई उल्लेख अभिलेख में प्राप्त नहीं होता।[106] हुविष्क के दो जैन मूर्ति अभिलेख मथुरा से प्राप्त हुए हैं। प्रथम अभिलेख मथुरा के कंकाली टीले से तथा द्वितीय लेख मथुरा के जमालपुर टीले स प्राप्त हुआ है। प्रथम लेख की भाषा संस्कृत से प्रभावित प्राकृत तथा द्वितीय अभिलेख की भाषा प्राकृत प्रभावित संस्कृत है। दोनों लेखों की लिपि ब्राह्मी है। प्रथम लेख पर वर्ष 44 तथा द्वितीय लेख पर वर्ष 51 का उत्खचन है जो कुषाण संवत् की तिथियां हैं। प्रथम अभिलेख 2 पंक्तियों का तथा द्वितीय अभिलेख 3 पंक्तियों का संवहन करता है। दोनों का वर्ण्य-विषय मूर्ति स्थापना है।

बासुदेव के काल का एक अभिलेख मथुरा से प्राप्त हुआ हैं जो जिन मूर्ति के आसन पर उत्खचित है। यह जिन मूर्ति मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त हुई है तथा वर्तमान समय में लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है। अभिलेख की भाषा संस्कृत प्रभावित प्राकृत तथा लिपि ब्राह्मी है। अभिलेख में तिथि 80 का उत्खचन है। सामान्यतः यह अभिलेख कोई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य प्रस्तुत नहीं करता। अभिलेख में बासुदेव के लिए महाराज उपाधि का प्रयोग किया गया है तथा कनिष्क हुविष्क प्रभृत राजाओं के लिए 'महाराज रजतिराज देवपुत्र शाहि' उपाधियों का प्रयोग किया गया है। चूंकि यह अभिलेख अंशतः प्राप्त हुआ है, अतः विद्वानों का अनुमान है कि अभिलेख में प्रतिमा के प्रतिष्ठित करने अथवा दान देने की बात उल्लिखित रही होगी।[107]

कनिष्क द्वितीय का बुद्ध-मूर्ति अभिलेख मथुरा से प्राप्त हुआ हैं जो उसके शासन के 14वें वर्ष का है तथा बुद्ध-मूर्ति पर उत्खचित है। लेख प्राकृत मिश्रित संस्कृत भाषा तथा ब्राह्मी लिपि में उत्खचित है। अभिलेख बुद्ध-मूर्ति की स्थापना की सूचना प्रदान करता है। अभिलेख में उल्लिखित कनिष्क के नाम तथा शासन वर्ष 14 के आधार पर प्रथमतः विद्वानों ने इसे कनिष्क प्रथम का अभिलेख स्वीकार किया था किन्तु मूर्ति की कलात्मक विशेषताओं तथा लेखन शैली की विशेषताओं के सूक्ष्म अध्ययन के बाद विद्वानों ने इसे बासुदेव के बाद शासन करने वाले कनिष्क द्वितीय का अभिलेख स्वीकार किया है।[108] अभिलेख में उत्खचित वर्ण ल, स और ह पूर्व कालीन गुप्त-शैली के तथा वर्ण ष और स पश्चिमी गुप्त शैली के है। इस आधार पर अनेक विद्वानों ने इसे परवर्ती कालीन तथा कनिष्क तृतीय का अभिलेख स्वीकार करने की चेष्टा की किन्तु कालान्तर के शोधों से यह अवधारणा निर्मूल हो गयी तथा इसे कनिष्क द्वितीय का अभिलेख स्वीकार किया गया। प्रथमतः तो कनिष्क द्वितीय को कनिष्क और हुविष्क के काल में उपराजा अथवा सहशासक माना गया किन्तु कालान्तर में इसे कुषाण वंशीय शासक स्वीकार किया गया।

द्वितीय कनिष्क के काल का एक अन्य अभिलेख भी प्राप्त हुआ है जिसे आरा पाषाण लेख कहा जाता है। यह पाषाण अभिलेख आधुनिक पाकिस्तान में अटक नगर से दस मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित आरा नामक स्थान से एक कुएं से प्राप्त हुआ है। स्टेनकोनोव इस स्थल को आर कहते हैं।[109] इस पाषाण खण्ड की लम्बाई 2 फुट 8 इंच तथा चौड़ाई 9 इंच है तथा 6 उत्खचित पंक्तियों का संवहन करता है। इस अभिलेख की भाषा प्राकृत तथा लिपि कुषाण कालीन खरोष्ठी है। इस लेख में 41वें वर्ष का उल्लेख प्राप्त होता है जो कनिष्क संवत् की तिथि होगी। अभिलेख का मुख्य वर्ण्य-विषय दषव्हर नामक व्यक्ति द्वारा अपने माता-पिता के पूजार्थ कूप-निर्माण है। वर्तमान समय में यह अभिलेख लाहौर संग्रहालय में सुरक्षित है।

वर्तमान पाकिस्तान के कैम्पबेलपुर से 6 मील दूर स्थित कामरा नामक स्थान के एक वृहदाकार टीले के 10 मीटर नीचे तल से एक शिला-फलक प्राप्त हुआ है जो लेख युक्त है। लेख की भाषा उत्तरी-पश्चिमी प्राकृत तथा लिपि खरोष्ठी है। अभिलेख की प्रथम पंक्ति के प्राम्भिक अक्षर तथा पंक्ति 4 के बाद के अंश खण्डित हैं। अतः वाल्टन डाबिन्स, अहमद हसन दानी, ब्रतीन्द्रनाथ मुखर्जी, फुसमन और परमेश्वरी लाल गुप्त प्रभृत विद्वानों ने इसका पाठ अपने-अपने ढ़ंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। परिणामतः अद्यतन इनके मध्य एकमत स्थापित नहीं हो पाया है। सामान्यतः यह अभिलेख कुषाण कालीन है तथा कूप-उत्खनन से सम्बन्धित है। विद्वानों ने इसे वाशिष्क का अभिलेख स्वीकार किया है। मध्य प्रदेश के सांची के ध्वंसावशेष से सन् 1893 ई. में फ्युहरर महोदय को बुद्ध की एक प्रतिमा प्राप्त हुई थी। यह बौद्ध प्रतिमा लेख युक्त है। लेख की भाषा संस्कृत से प्रभावित प्राकृत तथा लिपि ब्राह्मी है। लेख बुद्ध प्रतिमा के आसन पर उत्खचित है। अभिलेख में वर्ष 28 का उल्लेख है जो कुषाण संवत् की तिथि है। विद्वानों ने इसे वाशिष्क का अभिलेख स्वीकार किया हैं। मथुरा से अनतिदूर स्थित

ईसापुर से एक यूप स्तम्भ इसी नरेश का प्राप्त हुआ है। इस यूप स्तम्भ पर भी उक्त तिथि ही अंकित है जिससे सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि इस तिथि के कुछ समय पूर्व ही वाशिष्क राज्यारुढ़ हुआ था।

सन् 1957 ई. में फ्रांसीसी पुरातात्विक आयोग के तत्वावधाम में आन्द्रे मारीच के नेतृत्व में अफगानिस्तान के उत्तरी भाग में बधलान के समीप कुन्दुज नदी के तट पर स्थित सुर्खकोतल नामक स्थान का उत्खनन कराया गया। यह अभिलेख भारतीय बैक्ट्रियायी भाषा (तोखारी भाषा) में उत्खचित है। लेख की लिपि यूनानी है। इस अभिलेख में कनिष्क द्वारा संस्कार कराये गये एक देवगृह का उल्लेख प्राप्त होता है। अभिलेख में वर्ष 31 का उल्लेख है जो कुषाण-संवत् की तिथि है। अभिलेख पद्य शैली में उत्खचित है। इस अभिलेख की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें कनिष्क के पिता का नाम कोजगष्क उल्लिखित है। सुर्खकोतल अभिलेख में कुषाणों के जिस देव गृह का वर्णन किया गया हैं, वह उनका देवकुल ही रहा होगा। इस देवगृह से कुषाण राजाओं और राजकुमारों की मूर्तियां भी प्राप्त हुई है। बुस्सागली ने इन मूर्तियों का साम्य मथुरा (माट) से प्राप्त कुषाण देवकुल की मूर्तियों से स्थापित किया है।[111] इस अभिलेख से स्पष्ट है कि कुषाणों में अपने पूर्वजों की मूर्तियों बनाकर उन्हें पूजने की प्रथा विद्यमान थी।

परवर्ती कुषाण कालीन कतिपय कुषाणेत्तर अभिलेख भी विभिन्न अवस्थाओं में पाये गये हैं। इनमें विशाखमित्र का केलवन प्रस्तर पात्र अभिलेख प्रथम है। यह अभिलेख वर्तमान बिहार प्रान्त के पटना जिले के केलवन नामक ग्राम के एक खेत से जुताई करते समय किसान को प्राप्त हुआ था। यह लेख एक प्रस्तर पर उत्कीर्ण है जिसकी आकृति एक कटोरे की भांति है। लेख कटोरे के मुंह पर संस्कृत मिश्रित प्राकृत भाषा में उत्खचित है। इसकी लिपि कुषाण कालीन ब्राह्मी है। लेख में 108 तिथि अंकित है जो कनिष्क-संवत् की तिथि होगी।[112] नाम के आधार पर विशाखमित्र मगध के मित्र राजाओं से सम्बद्ध लगता है।

भद्रमघ का एक अभिलेख कोसम से एक पाषाण खण्ड पर उत्खचित प्राप्त होता है। कोसम वर्तमान कौशाम्बी का पुरा नाम है। यह अभिलेख हसनाबाद ग्राम में एक कुएं के पास पड़ा मिला है। प्राप्ति से पूर्व इस पाषाण खण्ड का प्रयोग लोग अपने औजार तेज करने के लिए करते थे। यह प्रस्तर खण्ड 2 फुट 10 इंच ऊंचा इतना ही चौड़ा तथा 3 इंच मोटा है। इसका ऊपरी भाग अर्द्धगोलाकार तथा नीचे का भाग खण्डित है। इस लेख की मात्र 4 पंक्तियां अवशिष्ट है जिनमें अन्तिम दो पूर्ण अपठनीय हैं। इस अभिलेख की भाषा प्राकृत प्रभावित संस्कृत तथा लिपि ब्राह्मी है।[113] कोसम से ही भीम वर्मा का एक मूर्ति अभिलेख भी प्राप्त हुआ है। यह लेख शिव पार्वती की खण्डित मूर्ति के पाद-पीठ पर उत्खचित हैं। इस अभिलेख में मात्र तीन पंक्तियां है जो संस्कृत भाषा एवं कुषाणोत्तर युगीन ब्राह्मी लिपि में उत्खचित हैं।[114] मालव नेता सोमसोगी का नान्दसा यूप अभिलेख बर्नाला यूप अभिलेख, बडवा पाषाण भूप अभिलेख आदि इसी भांति के अभिलेख हैं जिनकी सम्यक् गवेषणा यथा स्थान की गयी है। प्राचीन विश्व की जिन संचरणशील तथा बर्बर जातियों ने अपने आक्रमणों एवं अधिकारों से एशिया के विभिन्न भागों को प्रभावित किया उनमें शक क्षत्रपों का महत्वपूर्ण स्थान है। पश्चिमी तथा पश्चिमोत्तर भारत में इनकी विद्यमानता को प्रमाणित करने वाले अनेक अभिलेख प्राप्त होते हैं। मथुरा से शोडास के काल का एक पाषाण फलक अभिलेख प्राप्त होता है। यह पाषाण फलक फ्युहरर महोदय को सन् 1890-91 ई. में कंकाली टीले से प्राप्त हुआ था। यह एक जैन अभिलेख है तथा इसका उद्देश्य आयाग पट्ट की पूजा है। गद्यात्मक शैली में उत्खचित यह अभिलेख मात्र चार पंक्तियों का संवहन करता है। अभिलेख की भाषा संस्कृत तथा लिपि प्रथम शताब्दी ई. के पूर्वार्द्ध की अवधि की ब्राह्मी है। इस पाषाण फलक पर एक रानी की मूर्ति उत्कीर्ण है जो दासियों से परिवेष्टित है। इस अभिलेख में तिथि 62 का उल्लेख है किन्तु अद्यतन धारणाबद्ध रुप से यह कह पाना कठिन है कि यह तिथि किस संवत् से सम्बद्ध है।

नासिक स्थित पाण्डलेन की लयण सं. 10 के वाम पार्श्व में स्थित कोठरी के ऊपर नहपान की पुत्री तथा उषवदात की पत्नी दक्षमित्रा का लेख उत्खचित है। इसी लेख के नीचे संस्कृत प्रभावित प्राकृत भाषा तथा ब्राह्मी लिपि में नहपान का लेख उत्खचित हैं जिस पर वर्ष 41, 42 एवं 45 का उल्लेख प्राप्त होता है। इनमें प्रथम तिथि के साथ मास का, दूसरी तिथि के साथ मास तथा दिन का तथा तीसरी तिथि के साथ केवल दिन का उल्लेख प्राप्त होता है। अभिलेख में दिये गये दो दानों का विवरण प्राप्त होता है। उषवदात द्वारा निर्मित इस लयण की विशेषता थी कि यह किसी सम्प्रदाय विशेष के लिए निर्मित अथवा दत्त नहीं था अपितु इसका उपयोग समस्त सम्प्रदाय अथवा संघ के भिक्षु कर सकते थे। अभिलेख से यह भी ज्ञात है कि ऋषभदत्त ने 3000 कार्षापण से एक अखयनीवि की स्थापना की थी। नासिक की गुहा सं. 10 से ही नहपान का एक अन्य अभिलेख भी मिला है जो अतैथिक है। अभिलेख की भाषा संस्कृत है तथापि उस पर प्राकृत का प्रभाव अत्यधिक है। लेख गुफा के बरामदे की पिछली दीवार पर छत के नीचे खुदा है। इस अभिलेख का वर्ण्य-विषय नहपान के दामाद उषवदात द्वारा एक गुहा तथा जलकुण्डों का निर्माण कराया जाना है तथा गुहा में निवास करने वाले भिक्षुओं के भोजन की व्यवस्था के लिए खेत खरीद कर दान दिया जाना है।[116] यह अभिलेख क्षहरातों की राज्य-सीमा के निर्धारण में भी सहायक हैं।

पुर्ण जिले के कार्ले नामक स्थान पर एक चैत्य विद्यमान है। इस चैत्य के मध्यवर्ती द्वार के ऊपर दक्षिण पार्श्व में एक लेख अंकित है जिसे नहपान कालीन कार्ले गुहा लेख कहा जाता है। लेख तिथि-विहीन है तथा इसकी भाषा प्राकृत एवं लिपि ब्राह्मी है। इस अभिलेख में नहपान के जामाता उषवदात द्वारा बलूरक लयण निवासी भिक्षुओं मापन के लिए करजिक ग्राम के दान देने का उल्लेख है। यहां मापन का अभिप्राय वर्षा मापन से होना चाहिए। दान के अतिरिक्त इसमें

उषवदात की प्रशस्ति का भी अंकन है। इससे यह भी ध्वनित होता है कि उषवदात न केवल बौद्ध-भिक्षुओं का ही सम्मान करता था अपितु ब्राह्मण धर्म का भी वह समादर करता था। उसने ब्राह्मणों के लिए तीस हजार गायें, सोलह ग्राम दान किये तथा निर्धन ब्राह्मणों की आठ कन्याओं के पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न कराये।

नहपान कालीन एक अभिलेख जुन्नार की गुहा से प्राप्त हुआ है जिस पर वर्ष 46 का अंकन है। इस अभिलेख को नहपान के अमात्य अयस ने अत्खचित कराया था। यह अभिलेख मात्र तीन लघु पंक्तियां धारण करता है। लेख की भाषा प्राकृत एवं लिपि ब्राह्मी है। स्टेन कोनोव ने अभिलेख में उत्खचित तिथि को 76 पढ़ा है तथा इसे नहपान द्वितीय का अभिलेख माना है किन्तु अधिकांश विद्वान इस मत मे श्रद्धा नहीं रखते।[117]

कार्द्दमक वंशीय चष्टन का एक अभिलेख गुजरात के कच्छ प्रदेश के अन्धौ नामक स्थान से मिला है जिसे चष्टन कालीन अन्धौं पाषाण अभिलेख कहा जाता है। अभिलेख मे सम्वत् 11 का उल्लेख है जो शंक संवत् की तिथि प्रतीत होती है। गद्यात्मक शैली में उत्खचित इस अभिलेख की भाषा प्राकृत तथा लिपि ब्राह्मी है। यह लेख एक खण्डित प्रस्तर-खण्ड पर लिखा गया है। अभिलेख उत्खचन का उद्देश्य सामोतिक के पुत्र के शासन काल में यष्टि की स्थापना है। अभिलेख में सामोतिक के पुत्र का उल्लेख प्राप्त नहीं होता, संभवतः यह नामोल्लेख खण्डित अंश में रहा होगा जो अप्राप्त है।[118]

सौराष्ट्र में जूनागढ़ से एक मील पूरब गिरनार की पहाड़ी से प्रथम रुद्रदामा का एक लेख प्राप्त हुआ है जिसे रुद्रदामा का जूनागढ़ अभिलेख कहा जाता है। यह लेख उसी शिला खण्ड के ऊपर उत्खचित है जिस पर अशोक के चतुर्दश लेखों का समूह तथा गुप्त सम्राट स्कन्दगुप्त का अभिलेख उत्खचित है। अभिलेख की भाषा संस्कृत तथा लिपि ब्राह्मी है। सम्पूर्ण लेख से ज्ञात होता है कि विरल स्थलों पर प्राकृत

के सूक्ष्म प्रभाव भी इस पर हैं। लेख में इसके रचयिता का नामोल्लेख प्राप्त नहीं होता। अभिलेख का मुख्य वर्ण्य-विषय सुदर्शन झील के बांध के विध्वस्त हो जाने के बाद रुद्रदामा के अमात्य पहलव कुलैप-पुत्र सुविशाख द्वारा उसका प्रतिसंस्कार कराना है। ऐतिहासिक दृष्टि से अभिलेख की पंक्ति 9 से पंक्ति 16 तक के अंश विशेष महत्ता के हैं क्योंकि इसमें रुद्रदामा के गुणों, शौर्य, अनुराग तथा धर्मपरायणता का उल्लेख किया गया है। दूसरा ऐतिहासिक तथ्य यह ज्ञात होता है कि उसने जिस शातकर्णि को पराजित किया था, वह उसका निकट सम्बन्धी था। इससे यौधेयों के साथ उसके सम्बन्ध का ज्ञान होता है। इस अभिलेख में सुदर्शन झील के प्रति संस्कार के सन्दर्भ में 500 वर्ष पूर्व के इतिहास पर भी प्रकाश डाला गया है।

रुद्रदामा प्रथम के पुत्र प्रथम रुद्र सिंह का गुन्दा पाषाण लेख गुजरात के जामनगर जिले के गुन्दा नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। यह लेख एक पाषाण-खण्ड पर उत्कीर्ण है तथा वर्तमान समय में राजकोट के वाटसन संग्रहालय में सुरक्षित है। गद्यात्मक शैली में उत्खचित इस अभिलेख में मात्र 5 पंक्तियां हैं। अभिलेख की भाषा प्राकृत प्रभावित संस्कृत तथा लिपि ब्राह्मी है। इस अभिलेख में आभीरों तथा उनकी बर्द्धमान शक्ति का उल्लेख मिलता है। गुजरात के जूनागढ़ से जयदामा के पौत्र का एक अभिलेख संस्कृत भाषा तथा ब्राह्मी लिपि में उत्खचित प्राप्त हुआ है। प्रथम रुद्रसेन का गढ़ा पाषाण-लेख गुजरात के राजकोट के गढ़ा नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। इसकी भाषा प्राकृत प्रभावित संस्कृत एवं लिपि ब्राह्मी है। गुजरात के शाबरकण्ठा जिले में शामलजी के समीपस्थ देवनीमोरी नामक स्थान से रुद्रसेन प्रथम का देवनीमोरी पाषाण मंजूषा अभिलेख प्राप्त हुआ है। अभिलेख की भाषा संस्कृत एवं लिपि ब्राह्मी है।

मध्य भारत में सांची के निकट स्थित कानाखेड़ा नामक ग्राम से श्रीधर वर्मा का एक पाषाण लेख प्राप्त हुआ है जिसे श्रीधर वर्मा का कानाखेडा अभिलेख कहते हैं। इस अभिलेख की भाषा संस्कृत तथा लिपि ब्राह्मी है। अभिलेख गद्यात्मक शैली में लिखा गया है किन्तु अन्त मे एक श्लोक का अंकन है। अभिलेख

के अन्तः साक्ष्य से ज्ञात है कि यह लेख नन्द नामक शंक के पुत्र महादण्डनायक श्रीधर वर्मा के शासन काल का है। इस अभिलेख में दो तिथियों का अंकन है। प्रथम तिथि द्वितीय तथा तृतीय पंक्ति में उत्खचित है। यह तिथि तेरहवें वर्ष के श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की दशमी है। दूसरी तिथि के अन्त में उत्खचित है। आर0डी0 बनर्जी तथा डी0सी0 सरकार ने इसे शक संवत् की 201 तिथि स्वीकार किया है।[120] इसके विपरीत एन0सी0 मजूमदार ने इसे शक-संवत् का 241वां वर्ष[121] तथा वी0वी0 नीराशी ने कलचुरि चेदि संवत् का वर्ष 102 स्वीकार किया है।[122] यद्यपि अभिलेख में श्रीधर वर्मा को दण्डनायक कहा गया है किन्तु उसे धर्म विजयी कहा जाता तथा उसके स्वराज्य का उल्लेख उसे स्वतन्त्र शासक सिद्ध करता है। मध्य प्रदेश के सागर जिले के एरण से श्रीधर वर्मा का एक अन्य अभिलेख भी प्राप्त हुआ है जिसकी भाषा संस्कृत तथा लिपि ब्राह्मी है। इसमें वर्ष 27 की तिथि अंकित है।

गुप्तकालीन अभिलेख :

गुप्त वंशीय इतिहास के निर्माण में अभिलेख सबसे अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। ये अभिलेख प्रायः प्रस्तरों, धातुओं, सिक्कों तथा मूर्तियों पर उत्कीण्र पाये गये हैं। इन अभिलेखों को दो कोटियों में विभाजित किया जा सकता है- सरकारी तथा वैयक्तित्व। राजकीय अभिलेख या तो प्रशस्तियां हैं अथवा राज परिवार के लोगों अथवा राज्याधिकारियों द्वारा प्रचलित शासन। यद्यपि ये प्रशस्तियां राजकवियों अथवा राज्याधिकारियों द्वारा अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में रची गयी जिससे उसमें अतिरंजना का पुट अवश्य मिलता है तथापि उसमें वर्णित अभियान, युद्ध तथा विजय सदृश घटनाओं के सत्यान्वेषण के लिए नीर-क्षीर-विवेक की आवश्यकता होती है। राज शासन अधिकांशतः ताम्रपत्र पर अंकित पाये जाते हैं। ये ताम्रपत्र प्रायः भू-दान अथवा भू-विक्रय से सम्बन्धित पाये गये हैं। इसमें प्रायः विक्रीत भूमि की सीमा, दान का उद्देश्य, प्रतिबन्ध तथा मूल्य और माप

का विवरण प्राप्त होता है। वेयक्तित्व अभिलेखों का अंकन देवी देवताओं की मूर्तियों, धार्मिक स्थलों आदि पर अंकित मिलता है। ये अभिलेख लघुतर से लेकर महत्तर आकार तक प्राप्त हुए हैं। इसमें दान दाताओं का यशोगान दर्शित होता है। यद्यपि इसमें महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना का अंकन नहीं होता तथापि समाज के अन्य क्षेत्रों पर प्रकाश पड़ता है।

गुप्त राजवंश से सम्बन्धित अब तक सम्पूर्ण रुप से 42 अभिलेख प्राप्त हुए हैं। इनमें सत्ताईस लेख प्रस्तर पर उत्टंकित हैं। एक लेख लौह स्तम्भ पर उत्खचित है। अन्य चौदह अभिलेखों में तीन भूमि सम्बन्धी राज शासन तथा दस राज्याधिकारियों द्वारा ब्राह्मणों अथवा मन्दिरों के उपभोग के निमित्त भूमि-विक्रय अनुमोदन पत्र है। सन् 1888 ई. तक गुप्तवंशीय जितने भी अभिलेख प्राप्त हुए हैं उन्हें सम्पादित कर जे0एफ0 फ्लीट महोदय ने पुस्तक का आकार प्रदान किया।[123] कालान्तर के प्राप्त अभिलेख विभिन्न शोध-पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित किये गये। कुछ अभिलेखों को दिनेश चन्द सरकार महोदय ने अपनी पुस्तक में संकलित किया।[124]

समुद्र गुप्त के अभिलेख :

गुप्तकाल के प्राचीनतम अभिलेखों में समुद्रगुप्त के अभिलेख परिगणित किये जाते हैं। अद्यतन समुद्र गुप्त के चार अभिलेख प्राप्त हुए हैं- 1- प्रयाग प्रशस्ति अथवा प्रयाग स्तम्भ लेख, 2- एरण प्रशक्ति अथवा एरण शिलालेख, 3- वर्ष 4 का नालन्दा ताम्रपत्राभिलेख, 4- वर्ष 9 का गया ताम्रपत्राभिलेख।

प्रयाग-प्रशास्ति लाल बलुएदार 35 फुट ऊंचे गोल स्तम्भ पर 6'8'' x 5'4'' के क्षेत्रफल में उत्खचित है। अभिलेख समग्र रुप से 33 पंक्तियों का संवहन करता है। प्रशस्ति के अक्षर असमान आकृति के है। अक्षराकार 7/10'' से लेकर 3/4'' तक के है। इस स्तम्भ को मूलतः अशोक ने निर्मित कराया था तथा उस समय यह स्तम्भ कौशाम्बी में स्थित था। इस पर उसका एक लेख उत्खचित है।

कालान्तर में मुगल शासक जहांगीर ने इसे कौशाम्बी से प्रयाग स्थानान्तरित कराया तथा इस पर अपना एक लेख अंकित कराया। गुप्तकालीन प्रशस्ति का रचयिता समुद्रगुप्त का सान्धिविग्रहिक, कुमारामात्य, महादण्डनायक हरिषेण था।[137] अभिलेख की भाषा संस्कृत तथा लिपि गुप्त कालीन ब्राह्मी है। अभिलेख की शैली चम्पू (गद्य–पद्य मिश्रित) है। अभिलेख के आरम्भ में आठ श्लोक विविध छन्दों में उत्खचित हैं। क्षतिग्रस्तता के कारण प्रथम तथा द्वितीय श्लोक किस छन्द में उत्खचित किये गये हैं ज्ञात नहीं हैं। तृतीय, पंचम तथा अष्टम श्लोक स्रग्धरा छन्द में ; चतुर्थ तथा सप्तम् श्लोक शार्दूलविक्रीडित छन्द में तथा षष्ठम् श्लोक मन्दाक्रान्ता छन्द में उत्खचित है। श्लोकांकित अंश अत्यधिक क्षतिग्रस्त हो गया है। इस क्षतिग्रस्तता का प्रथम कारण अवान्तरकाल में अनेक अक्षराकृतियों का उत्टंकन है। दूसरा कारण काल–प्रवाह से अक्षराकृतियों का नष्ट होना तथा तीसरा कारण प्रशस्ति के इस भाग में स्वाभविक रुप से उत्पन्न होने वाली दरार है।

प्रयाग–प्रशस्ति को सर्वप्रथम 1934 ई. में प्रकाश में लाने का श्रेय कैप्टन ए. ट्रायर को है।[126] इसके बाद पादरी डब्ल्यू0 एच0 मिल ने कतिपय संशोधनों के साथ इसको प्रस्तुत किया।[127] मिल द्वारा प्रस्तुत पाठ अनेकानेक विसंगतियों के कारण श्रद्धेय न हो सका।[128] सन् 1837 ई. में जेम्स प्रिसेंप महोदय ने इसका नवीन पाठ तथा अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया जो अधिक श्रद्धेय रहा।[129] 1870 ई. में भाऊदाजी महोदय ने अपना एक शोध–पत्र रायल एशियाटिक सोसायटी बम्बई की शाखा के सम्मुख प्रस्तुत किया किन्तु इस पत्र का प्रकाशन न हो सका। अन्ततः 1888 ई. में जे0एफ0 फ्लीट ने इसका सम्पादन किया।[130] इसके बाद अनेकानेक विद्वानों ने समय समय पर अपने अध्ययन एवं सुझाव प्रस्तुत किये।

विवेच्य अभिलेख राजनैतिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है। अभिलेख के प्रारंभिक अंशों से पिता द्वारा राजपद पर उसके मनोनयन तथा तुल्यकुलजों के

विरोध का ज्ञान प्राप्त होता है। राज्यारोहण के बाद समुद्रगुप्त द्वारा उन्मूलित, प्रभावान्तर्गति में लाये गये राजाओं की सूचियां उत्खचित है। अभिलेख में समुद्र गुप्त द्वारा विजित राज्यों के साथ अपनायी गयी विविध नीतियों, यथा- प्रसभोहरणोद्धृत प्रभावमहतः, ग्रहण मोक्षानुग्रह, परिचारिकीकृत, भ्रष्टराज्योत्सन्न प्रतिष्ठापन, सर्वकरदान, आज्ञाकरण, प्रणामागमन, आत्म निवेदन, कन्योपायनदान, गरुत्मदंक स्वविषय भुक्ति शासन याचनाद्युपाय आदि का वर्णन प्राप्त होता है। एक समय रमेश चन्द मजूमदार ने प्रयाग-प्रशस्ति को अन्य साक्ष्य से असमर्थित की श्रेणी में रखते हुए इसकी विश्वासनीयता के प्रति सन्देह प्रकट किया था किन्तु उनके मत का समर्थन करने वाले अध्येताओं की अति न्यूनता है।

प्रयाग-प्रशस्ति से समुद्रगुप्त के व्यक्तित्व के बारे में भी प्रचुर ज्ञान प्राप्त होता है। प्रशस्ति से ज्ञात है कि समुद्र गुप्त बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न था। वह एक महान योद्धा अथवा कुशल प्रशासक मात्र न था अपितु वह कुशल राजनीतिज्ञ, उद्भट विद्वान, संगीत-कला में निष्णात एवं साहित्य-साधक था। सन् 1837 ई. में जेम्स प्रिंसेप महोदय ने यह अवधारणा व्यक्त की कि प्रयाग-प्रशस्ति की रचना समुद्र गुप्त की मृत्यु के बाद हुई थी। उनकी मान्यता का आधार प्रयाग-प्रशस्ति कि 30वीं पंक्ति है जहां 'आचक्षाण इव भुवो' उत्खचित है। प्रिंसेप महोदय ने उक्त स्थल का पाठ 'आचक्षाणः वभूव' किया तथा इसे मरणोपरान्त उत्खचित माना।[131] इसी मत का अनुगमन करते हुए फ्लीट महोदय ने भी इसे चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के काल में उत्खचित माना।[132] जी. व्यूहलर महोदय ने अपने एक लेख के माध्यम से प्रिंसेप तथा फ्लीट महोदय के मत का खण्डन करते हुए कहा कि प्रयाग-प्रशस्ति में ऐसा कुछ भी उत्खचित नहीं हैं जिसके आधार पर इसे मरणोत्तर स्वीकार किया जा सके।[133] प्रथमतः तो अध्येताओं ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया किन्तु विन्सेन्ट स्मिथ के प्रयास से यह महत्वपूर्ण विचारणीय बिन्दु सिद्ध हुआ।[134] तदुपरान्त रमेश चन्द्र मजूमदार महोदय ने इस तथ्य का प्रबल समर्थन

किया कि उक्त प्रशस्ति समुद्र गुप्त के जीवन काल में ही उत्खचित की गयी थी। इस मत के विरुद्ध कहने के लिए कुछ भी नहीं है।[135] बहादुर चन्द छाबड़ा के विचार प्रकाश में आने के बाद तो यह निर्विवाद रुप से सिद्ध हो गया कि यह प्रशस्ति समुद्र गुप्त के जीवन काल में ही उत्कीर्ण करायी गयी थी।[136] समुद्रगुप्त के राज्याश्रित की रचना होने के कारण इसमें अतिरंजना का पुट अवश्य है तथापि इसमें ऐतिहासिक तथ्यों की प्रचुरता है। उक्त प्रशस्ति को स्थूल रुप से यदि 'समुद्र गुप्त का जीवन चरित' कहा जाय तो अध्येताओं को कोई विप्रतिपत्ति नहीं होनी चाहिए।

मध्य प्रदेश के सागर जिले के अन्तर्गत स्थित खुराई तहसील में वीणा नदी के राम तट पर स्थित एरण (ऐरिकिंण) नामक स्थान से समुद्र गुप्त का एक दूसरा अभिलेख प्राप्त हुआ है जिसे एरण का अभिलेख कहा गया है। वस्तुतः यह प्रशस्ति है जो चौकोर लाल बलुए पत्थर पर उत्कीर्ण है। यह अभिलेख कनिंघम महोदय को अठारहवीं शताब्दी के आठवें दशक के मध्य किसी समय उक्त स्थान के वराह मन्दिर के ध्वंसावशेष से प्राप्त हुआ था। जो वर्तमान काल में इण्डियन म्युजियम कलकत्ता में सुरक्षित है। इस पाषाण-खण्ड का आकार 9'6'' x 3'1'' है। यह अभिलेख खण्डितावस्था में प्राप्त हुआ है। इसकी प्रारंभिक 6 पंक्तियां क्षत हो गयी है। इसके बाद के प्राप्त अंश भी कुछ क्षतिग्रस्त हो गये हैं। पंक्ति 25 से पंक्ति 27 के मध्य के काफी अंश क्षतिग्रस्त हो गये हैं तथा पंक्ति 27 से बाद के अंश पूर्णतः नष्ट हो गये हैं। इस अभिलेख की भाषा संस्कृत तथा शैली पद्यात्मक है जो वसन्ततिलका छन्द में आबद्ध है। इसकी लिपि ब्राह्मी है तथा लेख तिथि-विहीन तथा रचयिता-नाम-विहीन है। इस अभिलेख की लिपीय विशेषता यह है कि अक्षर के शिरोभाग चौकोर उत्खचित हैं। सर्वप्रथम जनरल कनिंघम महोदय ने इसकी सूचना सन् 1880 ई. में प्रकाशित की थी।[137] इसके बाद जे0एफ0 फ्लीट ने इसकासम्पादन किया।[138] इस सम्पादन के बाद जगन्नाथ अग्रवाल[139] दिनेश चन्द सरकार[140], दशरथ शर्मा[141], तथा बासुदेव सोहानी[142] प्रभृत विद्वानों ने

इसकी व्याख्या तथाअपना अभिमत प्रस्तुत किया। इस अभिलेख की दसवीं पंक्ति में समुद्र गुप्त का नाम उत्खचित है।[143] जे. एफ. फ्लीट ने पंक्ति 9 में उत्खचित 'बभूव' शब्द के आधार पर यह संभावना व्यक्त की है कि लेख के प्रथम भाग में उसके कुछ पूर्वजों का नाम अंकित रहा होगा[144] अभिलेख के उत्खचन का उद्देश्य स्पष्ट रुप से अंकित नहीं है किन्तु पंक्ति 25-26 में ऐरिकिण में होने वाले किसी स्तम्भ के निर्माण-कार्य का उल्लेख है।[145] जे. एफ. फ्लीट महोदय की अवधारणा है कि जिस पाषाण-खण्ड पर यह अभिलेख उत्कीर्ण है उसकी 25वीं पंक्ति के टूटे भाग के ऊपर किसी मूर्ति का निर्माण किया गया रहा होगा तथा यह मूर्ति युक्त पाषाण-खण्ड किसी मन्दिर से सम्पृक्त रहा होगा। कनिंघम के अनुसार यह अभिलेख विष्णु की उस विशाल प्रतिमा से सम्बन्धित रहा होगा जो एरण में वराह मन्दिर के तुरन्त बाद उत्तर दिशा में स्थित है।[146]

अभिलेख की पंक्ति 17 में 'दत्ता' शब्द का प्रयोग किया गया है। कतिपय विद्वानों की अवधारणा है कि यहां समुद्र गुप्त की पत्नी की ओर संकेत है। सम्पूर्ण श्लोक में उसकी पत्नी, धन-धान्य तथा पुत्र-पौत्रों का उल्लेख किया गया है।[147] इस अवधारणा के प्रति सोहानी महोदय ने आपत्ति व्यक्त करते हुए कहा कि गुप्त सम्राटों के प्राप्त किसी भी अभिलेख में किसी भी रानी का नाम 'देवी' शब्द से विहीन नहीं है। इस प्रकार का राज-प्रतिष्ठा-च्युत प्रयोग किसी भी प्रशस्ति में अक्षम्य होगा। अतः यहां समुद्र गुप्त की पत्नी का नामोल्लेख मानना युक्ति युक्त पूर्ण न होगा। उनकी धारणा है कि सम्राट की भार्या के रुप में पृथ्वी का प्रयोग पारम्परिक रुप से पाया जाता है।[148] रामायण[149] में राजकुमारियों को वीर्य शुल्का अर्थात् पराक्रम द्वारा जीती गयी कहा गया है। इसी भांति भागवत पुराण[150] में 'वीर्यशुल्केन हताः स्वयंवरे' तथा रघुवंश महाकाव्य[151] में 'वीर्यशुल्का' शब्द का प्रयोग किया गया है। अतः सोहानी महोदय का विचार अधिक सभी चीन प्रतीत होता है।

एरण--प्रशस्ति कब तथा किसके द्वारा उत्खचितकरायी गयी थी इस विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। इस सन्दर्भ में एरण-प्रशस्ति की 9 पंक्ति में उत्खचित 'बभूव' शब्द विशेष महत्व का है। जे0एफ0 फ्लीट की अवधारणा के अनुसार भूतकालिक क्रिया के रुप में प्रयुक्त'वभूव' शब्द समुद्रगुप्त के किसी पूर्वज के लिए प्रयुक्त हुआ है किन्तु यह अभिलेख समुद्र गुप्त का ही है। डी.सी. सरकार की अवधारणा के अनुसार वभूव शब्द से पूर्व 'पुत्रों' शब्द उत्खचित रहा होगा। इससे इस संभावना को प्रधानता प्राप्त होती है कि इसके आर्धांश में चन्द्रगुप्त प्रथम का नामोल्लेख रहा होगा तथा अपर खण्डितांश में समुद्रगुप्त का नामोल्लेख रहा होगा। यद्यपि जगन्नाथ अग्रवाल महोदय सरकार के मत के प्रति श्रद्धा नहीं रखते तथा इसे समुद्र गुप्त का मरणोत्तर अभिलेख स्वीकार करते है किन्तु सरकार का कथन है कि संस्कृत साहित्य एवं अभिलेखों में भूतकालिक लड्.लकार और लिट् लकारों का प्रयोग वर्तमान काल के अर्थ में प्रयुक्त होने के असंख्य उदाहरण प्राप्त होते है। एरण अभिलेख के 'बभूव' शब्द का प्रयोग भी इसी भांति का ही है।[152]इन मत वैभिन्नों के विद्यमान होते हुए भी उक्त अभिलेख अनेक दृष्टियों से अतिमहत्वपूर्ण हैं। प्रस्तुत अभिलेख में समुद्र गुप्त के सुखद पारिवारिक जीवन का उल्लेख है। इनमें समुद्रगुप्त की सामरिक उपलब्धियों तथा राज्य-प्राप्ति का सूक्ष्य संकेत प्राप्त होता है। फ्लीट तथा सरकार का यह मानना है कि हो सकता है कि अभिलेख की खण्डित पंक्तियों में समुद्रगुप्त के एरण स्थित किसी अधीन राजा का उल्लेख रहा हो जिसने यह अभिलेख उत्खचित कराया हो। सरकार का तो यह भी मानना है कि वह अधीनस्थ राजा दत्तदेवी का सम्बन्धी रहा होगा।[153] दशरथ शर्मा तो यह निश्चित मानते हैं कि इस लेख के चौथें श्लोक में भी समुद्र गुप्त के द्वारा किसी राजा के अभिषिक्त किये जाने का उल्लेख है। इसी अभिषिक्त नरेश ने यह अभिलेख उत्खचित कराया था।[154]

समुद्रगुप्त के दो ताम्रपत्राभिलेख भी प्राप्त हुए है. नालन्दा ताम्रपत्राभिलेख

तथा गया ताम्रपत्राभिलेख। नालन्दा ताम्रपत्राभिलेख 1927–28 ई. में बिहार प्रान्त के बड़गांव के पुरातात्विक उत्खनन के समय प्राप्त हुआ था। यह लेख 11. 5'' x 9'' आकार के ताम्रपत्र पर अंकित है तथा वर्तमान समय में कलक्ता राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित है। सर्वप्रथमहीरा नन्द शास्त्री महोदय ने उक्त ताम्रपत्राभिलेख के सम्बन्ध में एक लघु लेख प्रकाशित किया।[155] कालान्तर में अमलानन्द घोष महोदय ने इसका सम्पादन प्रस्तुत किया।[156] इसके बाद दिनेश चन्द सरकार,[157] आर.सी. मजूमदार,[158] पी.एल. गुप्त,[159] शकुन्तलाराव शास्त्री,[160] बासुदेव उपाध्याय,[161] सोहानी,[162] वी.पी. सिन्हा,[163] प्रभृत विद्वानों ने अपना अध्ययन प्रस्तुत किया।

विवेच्य ताम्रपत्राभिलेख ताम्रपत्र के एक ओर उत्खचित है तथा नालन्दा में विहार सं. 1 के उत्तरी बरामदे से कोठरी के द्वार के सामने पड़े हुए मलवे के ढेर से प्राप्त हुआ था। इसके समीपस्थ ही पालवंशीय शासक धर्मपाल का भी एक दानपत्र प्राप्त हुआ है। लेख की भाषा संस्कृत, शैली गद्यात्मक तथा लिपि ब्राह्मी है। इस राज शासन में समुद्र गुप्त द्वारा अपने पांचवे राजवर्ष के माघ मास के दूसरे दिन को आनन्दपुर स्थित जयस्कन्धावार में रहते समय क्रमिल विषय अन्तर्गत भद्रपुष्करक ग्राम निवासी जयभट्ट स्वामी नामक ब्राह्मण को भूमिदान देने के उल्लेख है। लेख में दूतक के रुप में कुमार श्री चन्द्रगुप्त का नाम है। इस लेख में कुल 12 पंक्तियां उत्खचित है जिनका अधिकांश भाग अपठ्य है। इस अभिलेख में भाषा, व्याकरण तथा बर्तनी सम्बन्धी अक्षम्य त्रुटियां हैं जो इसकी मौलिकता को संदिग्ध कर देती हैं।

गया ताम्रपत्राभिलेख बिहार प्रान्त के गया नामक स्थान से कनिंघम को प्राप्त हुआ था।यह किस स्थिति में प्राप्त हुआ इसकी सम्यक् जानकारी का तो अभाव है किन्तु कतिपय विद्वानों का अनुमान है कि सन् 1883 ई. से पूर्व किसी ब्राह्मण ने इसे कनिंघम महोदय को प्रदान किया था। वर्तमान समय में यह ताम्रपत्राभिलेख ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित है। यह अभिलेख 8'' x 7.5'' के एक

ताम्रफलक पर उत्कीर्ण है। इस लेख में 15 पंक्तियां उत्खचित है जो पर्याप्त सुरक्षित हैं। इससुरक्षित अभिलेख की उपादेयता नालन्दा ताम्रपत्राभिलेख के पुनर्नियोजन में भी सिद्ध होती है। ताम्रपत्र के दाहिनी ओर बीच में एक अण्डाकार मुहर संलग्न है। इसके ऊपरी गरुड़ाकृति अंकित है जो पंख फैलाये है तथा सामने की ओर देख रहा है। इसके नीचे पांच पंक्तियों में लेख उत्खचित है जो अब अपठ्य हो चुका है। मात्र अन्तिम पंक्ति में उत्खचित समुद्र गुप्त को सायास पढ़ा जा सकता है। सर्वप्रथम 1883 ई. में कनिंघम महोदय ने इस अभिलेख की सूचना प्रकाशित की।[165] इसके बाद जे.एफ. फ्लीट ने इसका सम्पादन किया।[177] इस ताम्रपत्राभिलेख से ज्ञात है कि समुद्रगुप्त ने अपने शासन के नवें वर्ष वैशाख मास के दसवें दिन अयोध्या स्थित जय स्कन्धावार में रहते समय गया विषयान्तर्गत रेवतिक ग्राम निवासी ब्राह्मण गोयदेव स्वामी को भूमिदान किया था।

कतिपय विद्वान नालन्दा तथा गया ताम्रपत्राभिलेख को कूट मानते है। इस अवधारणा की सर्वप्रथम संभावना जे.एफ. फ्लीट महोदय ने व्यक्त की। उनकी इस अवधारणा का आधार व्याकरण सम्बन्धी त्रुटि है। गया अभिलेख में राजा के विशेषण सम्बन्ध कारक में हैं तथा राजा का नाम कर्ता कारक में है[166] जो पाणिनीय व्याकरण के विरुद्ध है। अतः फ्लीट महोदय ने इसे कूट स्वीकार किया।[167] इसी भांति का प्रयोग नालन्दा ताम्रपत्राभिलेख में भी किया गया है, अतः हीरानन्द शास्त्री महोदय ने इसे भी कूट स्वीकार किया।[168] अमलानन्द घोष भी इसे कूट तो स्वीकार करते है किन्तु इन्हें किसी मौलिक शासन की अनुकृति मानते हैं। उनकी इस संभावना का आधार इन अभिलेखों में दी गयी तिथियां हैं। वे इन तिथियों को गुप्त-संवत् की तिथि स्वीकार करते हैं।[169] उक्त अभिलेखों की भाषा में प्राकृत का प्रभाव परिलक्षित होता है। अभिलेख में प्रयुक्त वर्ण 'व' तथा वर्ण :ब' के मध्य सम्यक् विभेद का अभाव है। अभिलेख में 'महानौहस्त्यश्वजय स्कन्धावार' शब्द का प्रयोग किया गया है। इस भांति के प्रयोग सातवीं शताब्दी ई. के उत्तरार्द्ध में प्रारम्भ

हुए। पुनः ताम्र, ताम्रफलक की लिपि तथा इसके साथ संयुक्त ताम्र मुहर की तिथियां भी एककालिक नहीं है। अतः इनके कौट होने की संभावना और अधिक बलवती होती जाती है। आर.एन. दण्डेकर[170] तथा आर.डी. बनर्जी[171] प्रभृत मात्र दो विद्वान ही इसे मौल स्वीकार करते हैं। भण्डारकर ने नालन्दा ताम्रपत्र के गया ताम्रपत्र से प्राचीनतर होने के कारण यह स्वीकार किया कि गया ताम्रपत्र मौल है।[184] इस तथ्य को स्वीकार करने में मुख्य आपत्ति यह है कि इसकी भाषा, शैली तथा वर्ण्य विषय गया ताम्रपत्राभिलेख के समान ही हैं, किं बहुना आदेशदाता पदाधिकारी भी गोपस्वामी ही हैं, मात्र विरुद्ध में लघुमात्र अन्तर है। इसी आधार पर ए. घोष ने इसे प्रारंभिक गुप्त-युग का कूट लेख स्वीकार किया। दिनेश चन्द सरकार ने इसके कौट होने के प्रति साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए कहा कि अभिलेख में उत्टंकित 'घ' आकृति सातवीं शताब्दी ई. से पूर्व की कथमपि नहीं हो सकती। अभिलेख में उत्खचित 'महानौहस्त्यश्वजयस्कन्धावार' तुल्य वाक्य का प्रथम प्रयोग हर्षवर्धन के मधुवन तथा बांसखेडा ताम्रपत्राभिलेख में मिलता है। उनका यह भी कथन है कि नालन्दा और गया ताम्रपत्राभिलेख के अतिरिक्त अन्य किसी अभिलेख में समुद्र गुप्त के लिए 'परमभागवत्' की उपाधि प्राप्त नहीं होती। इस अभिलेख में समुद्र गुप्त द्वारा अश्वमेध किये जाने का उल्लेख है किन्तु समुद्र गुप्त ने अपने शासन के पांचवे वर्ष में अश्वमेध सम्पन्न किया था, असंभव प्रतीत होता है। इससे ध्वनित होता है कि ये अभिलेख कूट हैं।[172]

रामगुप्त के अभिलेख :

आज से नौ दशक पूर्व तक जिस ऐतिहासिक पुरुष के विषय में ज्ञान शून्यता विद्यमान थी उसकी ऐतिहासिकता की संभावना सर्वप्रथम अक्टूबर 1923 ई. में सिलवां लेवी महोदय ने व्यक्त की।[173] तदुपरान्त राखालदास बनर्जी तथा अनन्त सदाशिव अल्टेकर ने अनेक साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर इस संभावना की पुष्टि की।[174] पुनः डी.आर. भण्डारकर[175] काशी प्रसाद जायसवाल[176],

विन्टरनित्स्त[177] बासुदेव विष्णु मीराशी[178], प्रभृत विद्वानों ने अपनी शोधपूर्ण मेधा के आधार पर इस तथ्य को गवेषित किया किन्तु रामगुप्त की ऐतिहासिकता के प्रति जो सन्देह उद्भूत एवं व्याप्त था, उसे निर्मूल नहीं किया जा सका। विद्वानों का एक वर्ग इस सन्देह की परिपुष्टि करता रहा।[179] यद्यपि कालान्तर के अभिलेख यथा-संजन का लेख,[180] खंभात का लेख,[181] सांगली का लेख,[182] विलसड के लेख तथा वैशाली के लेख भी इस संभावना को स्वीकार करते हैं तथापि विद्वानों में वैमत्य ही बना रहा। जब रामगुप्त के स्वयं के अभिलेख प्रकाश में आ गये तो रामगुप्त की ऐतिहासिकता की संभावना को अधिक बल मिला।

रामगुप्त के तीन अभिलेख बेसनगर जिसे पुरा भारत में विदिशा नाम से अभिहित किया जाता था, से दो मील दक्षिण दिशा में स्थित दुर्जनपुर नामक ग्राम से प्राप्त हुए है। ये समस्त अभिलेख जैन प्रतिमा की पाद-पीठ पर उत्खचित हैं। लेखो की भाषा संस्कृत तथा लिपि गुप्त कालीन ब्राह्मी है। ध्यातव्य है कि लेख तिथि-विहीन एवं वंशवृक्ष-विहीन हैं। याद-पीठ पर उत्खचित लेख का मध्य बिन्दु चक्र तथा दोनों पार्श्व सिंह की आकृतियों का संवहन करते हैं। इन अभिलेखों में महाराजाधिराज रामगुप्त का उल्लेख प्राप्त होता है। उत्कीर्ण प्रथम अभिलेख के अनुसार प्रथम मूर्ति जैन अर्हत् चन्द्रप्रभ की है जो आठवें तीर्थकर माने गये। इस मूर्ति का निर्माण चेलूक्षमण ने राम गुप्त के उपदेश से करवाया। द्वितीय प्रतिमा नवें तीर्थकर पुष्पदन्त की है। तीसरी प्रतिमा संभवतः चन्द्रप्रभ की ही रही होगी। इन प्रतिमाओं की भी विशेषता यह है कि इनकी शैलीगत विशेषताएं गुप्तकालीन हैं। यद्यपि अभिलेखों में तिथियों तथा वंशावली का अभाव है तथापि भाषा, लिपि तथा शैलीगत विशेषताएं इसे गुप्त कालीन सिद्ध करती है। रामगुप्त की महाराजाधिराज उपाधि उसके स्वतन्त्र नरेश होने की बोधक है। रामगुप्त के जैन मतविलम्बी होने के औचित्य का उल्लेख यथास्थान यथाशक्य किया गया है।

चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के अभिलेख :

गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के अद्यतन 6 अभिलेख प्राप्त हुए है। इनमें कुछ अभिलेख तिथियुक्त हैं तथा कुछ तिथि-विहीन। काल क्रम की दृष्टि से प्रथम अभिलेख मथुरा स्तम्भ लेख है जो एक प्रस्तर-स्तम्भ पर उत्खचित तथा वर्तमान समय में मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। अभिलेख की भाषा संस्कृत, लिपि ब्राह्मी तथा शैली गद्यात्मक है। स अभिलेख को सर्वप्रथम डी.बी. दिस्कलकर महोदय ने प्रकाशित किया।[183] अभिलेख का सम्पादन डी.आर. भण्डारकर[184] तथा पाठ संशोधन डी.सी. सरकार[185] ने किया। गुप्तवंश का यह प्रथम प्रामणिक अभिलेख है जिस पर तिथि का अंकन प्राप्त होता है। यद्यपि इसमें उल्लिखित चन्द्रगुप्त के शासन वर्ष की तिथि के पाठ के बारे में विद्वानों में वैमत्य है तथापि अधिकांश विद्वानों की धारणा है कि यह अभिलेख चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के शासन के पांचवे वर्ष में उत्खचित कराया गया था। इससे उक्त नरेश की राज्यारोहण तिथि का निर्धारण सुकर हो जाता है। अभिलेख में चन्द्र गुप्त द्वितीय विक्रमादितय के लिए 'परमभट्टारक' तथा 'महाराज' उपाधि प्राप्त होती है।

मध्य--प्रदेश के विदिशा जिले के उत्तर-पश्चिम में स्थित पहाड़ी उदयगिरि के नम से विश्रुत है। पहाड़ी के पूर्वी भाग में, धरातल पर एक गुहा-मन्दिर निर्मित है। गुहा-मन्दिर दो मूर्ति-फलकों से युक्त हैं। इन मूर्ति फलकों के उपरिभाग मे 2'4'' x 1.5' आकार के घटिल उपल फलकहैं जा लेख युक्त है जो उदयगिरि गुहा लेख गये। इन अभिलेखों के प्रकाशन का श्रेय कनिंघम महादय को है।[186] कालान्तर में एडवर्ड थॉमस महोदय ने इसका स्वतन्त्र पाठ किया तथा एच.एच. विलसन के अनुवाद के साथ प्रकाशित किया।[187] कालान्तर में कनिंघम[188] महोदय ने इसे पुनः संशोधित तथा फ्लीट महोदय[189] ने प्रकाशित किया। अभिलेख में गुप्त संवत् 82 के आषाढ़ शुक्ल 11 का उल्लेख है। यह लेख दानपरक अभिलेख है जो गुहादान की ओर संकेत करता है। गुहादाता तथा गुहा-निर्माता के रुप में चन्द्रगुप्त के सामन्त

सनकानिक जातीय महाराज छंगलग के पौत्र, महाराज विष्णुदास के पुत्र महाराज सोढल का उल्लेख है।

उदयगिरि की पहाड़ी पर ही अन्य गुफा में पिछली दीवार पर एक लेख अंकित है जिसे उदय गिरि का द्वितीय गुहा लेख कहा जाता है। यह अभिलेख संस्कृत भाषा तथा गुप्त कालीन ब्राह्मी में उत्खचित है। लेख तिथि-विहीन है। प्राकृतिक कारणों से गुफा दीवार की चट्टान से चिप्पड़ निकाल जाने से अभिलेख क्षतिग्रस्त हो गया है। इसे प्रकाश में लाने तथा प्रकाशित कराने का श्रेय कनिंघम महोदय को है।[190] पाठगत त्रुटियों का संशोधन हुल्श ने किया।[191] अभिलेख का सम्पादन फ्लीट ने किया।[192] अभिलेख का मुख्य वर्ण्य-विषय वीरसेन शाव द्वारा शिव-मन्दिर के रुप में गुफा का निर्माण हैं।

गढ़वा से चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के दो अभिलेख प्राप्त हुए हैं। प्रथम अभिलेख 9.5'' लम्बे तथा 6.5'' चौड़े खण्डित प्रस्तर खण्ड पर प्राप्त हुआ है। गढ़वा उत्तर प्रदेश के जनपद इलाहाबाद के करछना तहसील का एक ग्राम है। लेख युक्त प्रस्तर खण्ड गढ़वा ग्राम स्थित एक दुर्ग के भीतर एक आधुनिक मकान में लगा था जिसकी ओर सर्वप्रथम शिव प्रसा सितारे हिन्द ने लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। वर्तमान समय में यह कलकत्ता संग्रहालय में सुरक्षित है। मूलतः उत्खचित प्रस्तर-खण्ड किसी बड़े प्रस्तर-खण्ड का खण्डित भाग है जिसके तीन पार्श्व लेख युक्त हैं। दो पार्श्वों में कुमार गुप्त प्रथम के लेख अंकित हैं। पार्श्व भाग के क्षतिग्रस्त होने से इनका पूर्ण पाठ संभव नहीं हैं। अभिलेख के प्रकाशन का श्रेय कनिंघम[193] तथा सम्पादन का श्रेय फ्लीट[194] को प्राप्त है। वस्तुतः यह अभिलेख दानपरक अभिलेख है जो सत्र के लिए दस-दस दीनारों के दान की पुष्टि करता है। एक दान मातृदास तथा कतिपय अन्य व्यक्तियों द्वारा दिया गया था तथा दूसरा दान पाटलिपुत्र में निवास करने वाली किसी महिला द्वारा सत्र के निमित्त प्रदान किया गया था। अभिलेख में शासक का नाम तथा तिथि अंकित नही है किन्तु द्वितीय

लेख में उसकी उपाधि 'परमभागवत' प्राप्त होती है। तिथि संवत्सर 80, 8 प्राप्त है जो चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के राज्यकाल की सूचना देती है।

चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का प्रथम गढ़वा अभिलेख 9 पंक्तियों का संवहन करता है तथा द्वितीय गढ़वा अभिलेख 8 पंक्तियों का संवाहक है। द्वितीय लेख वाम पार्श्व में 4'' x 1' 4.25'' क्षेत्रफल में उत्खचित है। प्रथम लेख की प्रथम दो पंक्तियां तथा दोनों लेखों की उत्तरार्द्ध की पंक्तियां क्रमशः अप्राप्त एवं क्षतिग्रस्त हैं। द्वितीय लेख में सवत्सर 88 का उत्खचन प्राप्त होता है जो चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के काल की सूचक है। लेख में उत्कीर्ण 'परमभागवत उपाधि इस तथ्य को और अधिक पुष्ट कर देता है कि उक्त अभिलेख चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के काल का ही है। जे0 एफ0 फ्लीट ने इन दोनों लेखों को एक ही लेख का दो भाग माना है किन्तु अभिलेख के अन्तःसाक्ष्य यह पुष्ट करते हैं कि दोनों लेख दो समयों में उत्खचित कराये गये भले ही यह समय अत्यल्प रहा हो।

चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के काल का एक अन्य अभिलेख मध्य प्रदेश में, भोपाल में, दीवानगंज तहसील से लगभग 12 मील उत्तर-पूरब की ओर स्थित सांची स्थल से मिला है जिसे सांची का अभिलेख कहा गया लेख 2'6.25'' x 1'9'' वर्ग क्षेत्रफल में उत्खचित है। गद्यात्मक शैली में उत्खचित लेख की भाषा संस्कृत तथा लिपि गुप्त कालीन ब्राह्मी है। लेख सम्पूर्ण रुप से 11 पंक्तियों का संवहन करता है। इस अभिलेख की ओर सर्वप्रथम 1834 ई. में बी0एच0 हास्सन महोदय ने लोगों का ध्यान आकृष्ट किया।[195] कैप्टन ई. स्मिथ ने इसका जो छापा तेयार किया था उस आधार पर प्रिंसेप महोदय ने 1837 ई. में इसका पाठ प्रस्तुत किया। इसका सम्पादन जे.एफ. फ्लीट ने किया।[196] अभिलेख में गुप्त-संवत् 93 के भाद्रपद की चतुर्थी तिथि का उल्लेख प्राप्त होता है। इसका वर्ण्य-विषय दान है जो पांच भिक्षुओं के भोजन तथा दीप-प्रज्वलन के निमित्त काकनादबाट महाविहार के आर्य संघ को दिया गया था। दान दाता के रुप में उन्दानपुत्र आम्रकारदेव नामक

चन्द्र गुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के किसी अधिकारी का उल्लेख है। दान के रुप में ईश्वर शासक नामक ग्राम तथा 25 दीनार दिये जाने का उल्लेख है।[197] ऐतिहासिक दृष्टि से अभिलेख की सातवीं पंक्ति अत्यन्त महतवपूर्ण मानी गयी। चूंकि पंक्ति खण्डित है अतः इस पंक्ति को पूरित कर उसका अनुवाद करते हुए जेम्स प्रिंसेप ने कहा कि चन्द्रगुप्त का एक अन्य नाम देवराज था।[198] जे.एफ. फ्लीट ने देवराज को चन्द्रगुप्त का अमात्य स्वीकार किया है। यहां प्रिसेप की अवधारणा अधिक ग्राह्य प्रतीत होती हैं क्योंकि चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य की पुत्री प्रभावती गुप्ता के पूना एवं रिद्धपुर अभिलेखों से ज्ञात है कि चन्द्रगुप्त देवराज के रुप में भी प्रतिष्ठित था। दिल्ली से 9 मील दक्षिण स्थित मेंहरौली नामक ग्राम से कुतुबमीनार के पास स्थित एक शंक्वाकार लौह स्तम्भ प्राप्त हुआ है जिसका भूमितल पर ब्यास 16 इंच तथा ऊपर ब्यास 12 इंच है तथा इसकी ऊचाई 23 फुट 8 इंच है। इस पर संस्कृत भाषा, शार्दूल विक्रीडित छन्द में 3 श्लोक उत्खचित है। अतैथिक इस अभिलेख में किसी चन्द्र नामक नरेश की उपलब्धियों का अंकन किया गया है।[199] चन्द्र के समीकरण के विषय में विद्वानों में मतभेद है। एच.सी. सेठ[200] ने इस चन्द्र का तादात्म्य चन्द्र गुप्त मौर्य से, हर प्रसाद शास्त्री,[201] राखालदास बनर्जी[202], एन.क. भट्टसाली[203] ने सुसुनिया अभिलेख में उल्लिखित पुश्करण नरेश सिंह वर्मन के पुत्र चन्द्र वर्मन से, रमेश चन्द्र मजूमदार[204], कुषाण शासक कनिष्क से ए.एफ. आर. हार्नले[204अ] ने चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य से की है जिसका समर्थन विण्सेन्ट स्मिथ[205] राधा कुमुद मुकर्जी[206] आर.एन. दण्डेकर[207] दिनेश चन्द्र सरकार[208] एन. एन. घोष[209] गंगा प्रसाद मेहता[210] प्रभृत विद्वानों ने किया है तथा जो वर्तमान में सर्वाधिक प्रतिष्ठित मत स्वीकार किया जाता है। स्तम्भ लेख के अन्तः साक्ष्य के अनुसार विष्णुपद गिरि पर स्थापित किया गया था।[211] फ्लीट की अवधारणा है कि विष्णुपद दिल्ली की उस पर्वत श्रृंखला का ही नाम है जहां स्तम्भ इस समय विद्यमान है।[212] स्मिथ ने विष्णुपद की स्थिति मथुरा के समीप स्वीकार की है।[213] सी.एच. चक्रवर्ती ने इसे हरिद्वार स्थित हरि की पैड़ी[214] माना है। काशी प्रसाद

जायसवाल की मान्यता है कि हरिद्वार की प्रसिद्धि विष्णुपद के रुप में है, अतः यह स्थान हिमालय के समीप कहीं रहा होगा।[215] जयचन्द विद्यालंकार इसे शिवालिक पर्वत श्रृंखला में स्थित मानते हैं।[216] जयचन्द घोष[217] इसे विपाशा के किनारे कश्मीर मण्डल में स्थित मानते हैं जिसका समर्थन डी.आर. भण्डारकर[218] करते हैं। दशरथ शर्मा इसे अम्बाला जिले के अन्तर्गत स्थित सधौरा कस्बे के समीप स्थित स्वीकार करते हैं।[219] लोक प्रचलित अवधारणायें भी इसे अन्यत्र से तोमर अनंगपाल द्वारा यह अन्तरित स्वीकार करती है।[220] इसके विपरीत विण्सेन्ट स्मिथ इसे दिल्ली के किसी नरेश द्वारा अन्तरित स्वीकार करते हैं।[221] सी.एच. चक्रवर्ती अन्तरणकर्ता को फिरोजशाह तुगलक स्वीकार करते हैं क्योंकि वही अशोक के अभिलेखों का अन्तरणकर्ता भी है।[222]

कुमार गुप्त प्रथम के अभिलेख :

कुमारगुप्त के अद्यतन 14 अभिलेख प्राप्त हुए हैं। इनमें बिलसड़ का स्तम्भ लेख पहला है जो एटा जिला अन्तर्गत स्थित तहसील अलीगंज से चार मील उत्तर-पूरब की ओर स्थित बिलसड़ नामक गांव से प्राप्त हुआ है। उक्त ग्राम के उत्तर-पश्चिम कोने पर लाल पत्थर के चार खण्डित स्तम्भ स्थित है। इनमें दो स्तम्भों पर एक ही लेख अंकित है। जिसमें 13 पंक्तियां हैं तथा दूसरे लेख में 16 पक्तियां हैं। इन्हें खोज निकालने का रेय कनिंघम महोदय को है। इसका पाठ तथा अनुवाद 1880 ई. में उन्हीं द्वारा किया गया।[223] कालान्तर में इसका सम्पादन जे. एफ. फ्लीट द्वारा किया गया। 16 पंक्तियों का संवहन करने वाला लेख कालक्रम से क्षतिग्रस्त तथा अपठ्य हो गया है। प्राप्त लेखें की भाषा संस्कृत तथा शैली गद्य-पद्य मिश्रित हैं। पंक्ति 9 तक गद्य शैली तथा इसके बाद पद्य शैली का संयुजन किया गया है। प्रथम श्लोक स्रग्धरा तथा दूसरा श्लोक शाईल विक्रीडित छन्द में रचित है। अभिलेख में तिथि कुमार गुप्त (प्रथम) के शासन का वर्ष 96 अंकित हैं। अभिलेख का मुख्य विषय ध्रुवशर्मण द्वारा गुप्त संवत् 96 में एक प्रतोली का

निर्माण, एक सत्र की सथापना और महासेन के मन्दिर में इन स्तम्भों में इन स्तम्भों का लगाया जाना है।

कुमार गुप्त का द्वितीय अभिलेख इलाहाबाद के गढ़वा नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। जिस शिलाखण्ड पर चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का गुप्त संवत् 88 का लेख उत्खचित है; उसी शिलाखण्ड पर चन्द्रगुप्त के लेख के पृष्ठ भाग पर यह लेख अंकित है। इसअभिलेख की प्रथम पंक्ति तथा शेष पंक्तियों के प्रारंभिक अंश शिला खण्ड के क्षतिग्रस्त होने के कारण विनष्ट हो गये हैं। इसका सम्पादन जे0एफ0 फ्लीट ने किया।[224] इस अभिलेख में सत्र के स्थायी प्रबन्ध के लिए 12 दीनार दान करने का उल्लेख है। लेख पर गुप्त संवत् 98 का उल्लेख है।

कुमारगुप्त का एक अन्य लेख भी उक्त शिलाखण्ड पर ही चन्द्रगुप्त द्वितीय के लेख के ठीक नीचे अंकित है। दोनों लेखों की पृथकता प्रदर्शित करने के लिए एक पंक्ति (लाइन) का उत्खचन किया गया है। इस अभिलेख की प्रत्येक पंक्ति का अन्तिम अंश क्षतिग्रस्त हो गया है। यह अतैथिक लेख है। जिस स्थल पर तिथि का अंकन था वह अंश नष्ट हो गया है मात्र दिवसे 10 ही अवशिष्ट है। लेख में सत्र के स्थायी प्रबन्ध के लिए 10 दीनार तथा तीन (त्रय)...... देने का उल्लेख है। त्रय के आगे का अंश नष्ट हो गया है।[225]

कुमार गुप्त का चतुर्थ अभिलेख उदयगिरि गुहा लेख है। यह अभिलेख मध्य–प्रदेश के ईसागढ़ जिले में स्थित भिलसा (प्राचीन विदिशा) के समीपस्थ उदयगिरि की एक गुफा से प्राप्त हुआ है जिसे कनिंघम ने जैन गुफा सं. 10 की संज्ञा प्रदान की है। लेख गुफा के मुख्य कक्ष तथा अन्य कक्ष को जोड़ने वाली गली की मेहराब पर अंकित है। लेख समग्र रुप में 8 पंक्तियों का संवहन करता है तथा सुरक्षित अवस्था में विद्यमान है। संस्कृत भाषा में उत्खचित इस अभिलेख में 'नमः सिद्धेभ्यः' को छोड़कर शेष अंश पद्यात्मक शेली में उत्खचित है। इसमें उत्खचित श्लोक क्रमशः इन्द्रबज्रा, रुचिरा, इन्द्रबज्रा, वंशस्थ तथा उपेन्द्रवज्रा छन्द में रचित

है। लेख में संधिल की पद्मावती से उत्पन्न पुत्र शंकर द्वारा संवत् 106 में गुफाद्वार पर तीर्थकर पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित किये जाने का उल्लेख है। लिपि के आधार पर इसकी लिपि गुप्त कालीन तथा तिथि को गुप्त संवत् की तिथि स्वीकार किया जाता है क्योंकि इसमें किसी गुप्त बंशीय सम्राट का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

कुमार गुप्त प्रथम का एक अन्य अभिलेख पूर्वी बंगाल (आधुनिक बगलादेश) के राजशाही जिले के नाटोर तहसील के धनैदह नामक ग्राम से प्राप्त हुआ है। पतले ताम्रफलक पर उत्कीर्ण यह अभिलेख अत्यन्त खण्डित अवस्था में प्राप्त हुआ है। लेख के वाम पार्श्व का लगभग आधा तथा अंवशिष्ट भाग का ऊपरी बायां तथा निचला दक्षिण पार्श्व लगभग विनष्ट हो चुका है। इसके प्रकाशन का श्रेय राखालदास बनर्जी[226] तथा राधा गोविन्द बसाक[227] को प्राप्त है। यह प्रथम प्राप्त अभिलेख है जिसमें धार्मिक कार्य के निमित्त भू-विक्रय की घोषणा ताम्रपत्र पर गुप्त शासक द्वारा की गयी। इस लेख का उद्देश्य किसी व्यक्ति द्वारा जिसके नाम का उत्तर अंश मात्र विष्णु सुरक्षित है, राज्य में खादापर विषयान्तर्गत भूमि खरीदे जाने और उसके अनुरोध पर उसे वराह स्वामी नामक ब्राह्मण को दिये जाने का उल्लेख है। लेख में (गुप्त) संवत् 113 का उत्खचन है। विद्वानों का अनुमान है कि विनष्ट अंश में शासक कुमार गुप्त का नामोल्लेख रहा होगा।[228]

कुमारगुप्त का एक लेख मथुरा से मिला है जो जैन प्रतिमा पर उत्खचित है। सन् 1890-91 ई. में फुहरर महोदय को मथुरा के कंकाली टीले एक जैन प्रतिमा प्राप्त हुई जिस पर मात्र दो पंक्तियों का लेख अंकित है। अभिलेख की भाषा प्राकृत प्रभावित प्रतीत होती है क्योंकि लेख में दुहिता के स्थान पर धीता शब्द का प्रयोग किया गया है। लेख में कुमार गुप्त का नामोल्लेख तथा तिथि 107 का अंकन प्राप्त होता है। लेख में विवृत है कि संवत् 113 की 20 कार्तिक को कुमार गुप्त के राज्यकाल में कट्टियगण और विद्याधारी शाखा के दत्तिलाचार्य के कहने से भट्टिभव की पुत्री और ग्रहमित्र की पत्नी सामाध्या ने उस मूर्ति को प्रतिष्ठित किया।

फरवरी 1919 ई. में एम0बी0 गर्दे महोदय ने मध्य-प्रदेश के गूना जिले के तुमैन नामक स्थान से पाषाण पर लिखित एक अभिलेख प्राप्त किया जो कुमार गुप्त प्रथम से सम्बन्धित है तथा तुमैन पाषाण-लेख कहा जाता है।[229] अभिलेख खण्डितावस्था में विद्यमान है। इसके वाम पार्श्व का अर्धाधिक भाग क्षतिग्रस्त है। विवेच्य अभिलेख में गुप्त संवत् 116 में तुम्बवन (तुमैन) निवासी हरिदेव, श्रीदेव, धन्यदेव, भद्रदेव और संघदेव नामधारी पांच भाइयों द्वारा एक मन्दिर के निर्माण का उल्लेख किया गया है। अभिलेख में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बिन्दु चन्द्रगुप्त (द्वितीय) तथा उसके पुत्र कुमार गुप्त के नामोल्लेख के अनन्तर घटोत्कच गुप्त का नामोल्लेख है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि कुमार गुप्त तथा घटोत्कच गुप्त के मध्य सम्बन्ध का बोध कराने वाला अंश खण्डित भाग में रहा होगा। गर्दे का अनुमान है कि इस समय गोविन्द गुप्त एरिकिण (एरण) का उपरिक (गवर्नर) रहा होगा।

मध्य-प्रदेश के मन्दसोर नगर में नदी के पार्श्व में स्थित महादेव घाट की सीढ़ियों में सम्पृक्त एक पाषाण खण्ड पर उत्खचित एक लेख जे0एफ0 फ्लीट को प्राप्त हुआ था जो उनके द्वारा 1886 ई. में प्रकाशित किया गया[230] तथा मन्दसोर शिलालेख नाम से अभिहित किया गया। यह प्रशस्ति काव्य है जो वत्सभट्टि द्वारा रचित है। अभिलेख में विवृत है कि रेशम बुनने वाले कतिपय लोग अपने बन्धु बान्धवों सहित लाट विषय (वर्तमान नवसारी-भड़ौच का भू-भाग) से दशपुर (आधुनिक मन्दसोर) आये। उनमें से कुछ ने अपने व्यवसाय का परित्याग कर दिया। शेष जो लोग अपने पैतृक व्यवसाय में संलग्न हैं उन्होंने एक सुदृढ़ श्रेणी का संधटन किया। तन्तुवायों की इस श्रेणी ने जिन दिनों कुमार गुप्त पृथ्वी पर शासन कर रहा था और विश्ववर्मन के पुत्र बन्धु वर्मन् वहां के गोप्ता (प्रशासक) थे, सूर्य का एक मन्दिर बनवाया। मालवगण की तिथि-गणना के अनुसार 493 वर्ष बीत जाने पर सहस्र मास की शुक्ल पक्ष त्रयोदशी को मंगला चार पूर्वक मन्दिर का उद्धाटन अथवा स्थापन हुआ। इसके बाद विकृत

है कि अन्य राजाओं के शासन काल में इस मन्दिर का कुछ अंश गिर गया। अतः अब स्व–यश की वृद्धि के निमित्त इस श्रेणी ने सूर्य मन्दिर का संस्कार कराया।[231] यह कार्य 529 (मालव) वर्ष बीत जाने पर फाल्गुन (तपस्य) मास शुक्ल पक्ष 2 को समाप्त हुआ। चूंकि उक्त तिथि कुमार गुप्त प्रथम के शासन काल में पड़ती है, इस लिए इसे कुमार गुप्त की प्रशस्ति स्वीकार किया जाता है।

उत्तर–प्रदेश के जनपद फैजाबाद के करमदण्डा नामक स्थान के भराहीडीह नामक टीले से एक शिवलिंग प्राप्त हुआ हैं जिसका गोलाकार भाग 1 फुट 1 इंच ऊंचा तथा अष्टकोण का आधार 1 फुट 9 इंच ऊंचा है, पर संस्कृत भाषा तथा ब्राह्मी लिपि में लेख अंकित हैं। इसके सम्पादन का श्रेय स्टेनकोनोव को है।[232] लेख में कुमारण्य भट्ट के प्रपौत्र, विष्णु लिप्त भट्ट के पौत्र, चन्द्रगुप्त द्वितीय के कुमारामात्य शिखर स्वामिन के पुत्र, कुमार गुप्त (प्रथम) के कुमारामात्य महाबलाधिकृत पृथ्वीषेण द्वारा अयोध्या के कतिपय ब्राह्मणों को दान दिये जाने का उल्लेख है। अभिलेख पर गुप्त संवत् 117 के 10 कार्तिक तिथि का अंकन है।

बंगला देश के राजशाही जिलान्तर्गत स्थित नवगांव नगर के समीप स्थित सुलतानपुर नामक गांव के नमीरुद्दीन खां से रजनी मोहन सन्याल ने एक लेख युक्त ताम्रपत्र क्रम किया था जिसका आकार 9/1/2 इंच x 5/3/8 इंच है। चूंकि नमीरुद्दीन खां मूलतः कलाईकुरी गांव के निवासी थे, इसलिए इस लेख को कलाईकुरी ताम्रपत्राभिलेख संज्ञा प्रदान की गयी। लेख ताम्रफलक के दोनों ओर अंकित है। गुप्तकालीन दानादि के निमित्त राज्य की ओर से भूमि–विक्रय सम्बन्धी धोषणा करने वाले ताम्रलेखों में यह सर्वाधिक विस्तृत है। विद्वानों का अनुमान है कि यह वही ताम्रपत्राभिलेख है जो इसी जिले में स्थित बैग्राम नामक ग्राम में 1930 ई. में तालाब की खुदायी के समय एक अन्य ताम्रलेख जो दामोदर पुर लेख के साथ मिला था और जिसे मजदूर उठा ले गये थे। इसके प्रकाशन का श्रेय दिनेश चन्द सरकार को है।[233]

पूर्वी बंगाल (आधुनिक बंगाल देश) के दीनाजपुर जिले के दामोदरपुर ग्राम से 1915 ई. में सड़क-निर्माण के समय गुप्तकाल के पांच ताम्रपत्र लेख प्राप्त हुए जिनमें कुमार गुप्त के प्रथम दामोपुर अभिलेख के साथ, द्वितीय दामोदरपुर ताम्रपत्राभिलेख बुधगुप्त का पंचम एवं षष्ठ अभिलेख, तथा विष्णुगुप्त का प्रथम अभिलेख प्राप्त हुआ। इनके प्रकाशन का श्रेय राधा गोविन्द बसाल[234] को है। विवेच्य अभिलेख में विवृत है कि ब्राह्मण कर्पटिक ने तीन दीनार मूल्य पर एक द्रोणवाप खिल भूमि क्रय करने का आवेदन और सुविधापूर्वक अग्निहोल करने के निमित्त नीवी धर्म के अनुसार स्थायी व्यवस्था करने का अनुरोध किया था। अतः पुस्तपाल ने भूमि सम्बन्धी अधिकार आदि का सम्यक् परीक्षण किया और कोटि वर्ष विषय के आयुक्तक वेत्रवर्मन ने उसके इस आवेदन को गुप्त संवत् 124 के फाल्गुन मास के सातवें दिन स्वीकार किया। लेख में शासक के रुप में कुमार गुप्त (प्रथम) का नामोल्लेख है।

उक्त लेख के साथ ही कुमार गुप्त का द्वितीय दामोदरपुर अभिलेख भी प्राप्त हुआ है। इस अभिलेख पर गुप्त संवत् 128 के वैशाख मास के 13 की तिथि अंकित है। लेख का वर्ण्य-विषय प्रथम दामोदरपुर अभिलेख के तुल्य ही है। अभिलेख में विवृत है कि पंच महायज्ञ की नियमित व्यवस्था के लिए किसी व्यक्ति को (जिसका नाम मिट गया है) तीन दीनार प्रति कुल्यवाप की दर से दो दीनार मूल्य पर ऐरावत गोपराज्य नामक स्थान में पांच द्रोण खिल भूमि दिये जाने की घोषणा है। अभिलेख में शासक के रुप में कुमारगुप्त का नामोल्लेख है। वर्तमान बंगला देश के बांकुड़ा या बोगरा जिले के बैग्राम स्थान से 1930 ई. में एक तालाब की खुदाई करते समय एक ताम्रपत्राभिलेख प्राप्त हुआ है।

सन् 1930 ई. में बंगला देश के बोगरा या बांकुडा जिले के बैग्राम नामक स्थान से एक ताम्रलेख तालाब की खुदाई करते समय प्राप्त हुआ है जो ताम्रपत्र

के दोनों ओर उत्खचित हैं। इसमें संवत् 128 के माघ मास के 19 दिन की तिथि अंकित है। इस अभिलेख में 6 दीनार तथा आठ रुपक पर वैयिग्राम से सम्बद्ध विवृत और श्रीगोहली नामक स्थान में स्थित तीन कुल्यवाप खिल भूमि तथा दो द्रोण स्थल--वास्तु मोभिल और भास्कर नामक व्यक्तियों को गोविन्द स्वामिन की पूजा के निर्मित फूल, सुगन्ध आदि के व्यय और उनके पिता द्वारा निर्मित मन्दिर के सतत् संस्कार के हेतु दिये जाने का उल्लेख है।

उत्तर-प्रदेश में जनपद इलाहाबाद की करछना तहसील के मानकुंवर नामक ग्राम के एक बाग से कनिंघम को एक बुद्ध-प्रतिमा प्राप्त हुई थी। कनिंघम को यह परम्परा भी ज्ञात हुई कि मूलतः यह मान कुंवर से कुछ दूर स्थित पंच पहाड़ी के मध्य ईटों के एक टीले से मिली थी। लेख मूर्ति की पीठिका पर दो पंक्तियों में संस्कृत भाषा, ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण है। दोनों पंक्तियों के बीच धर्म चक्र, लघुमानव तथा सिंह मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। लेख में कुमार गुप्त की 'महाराज' उपाधि उत्खचित है। लेख का उद्देश्य बौद्ध प्रतिमा की स्थापना है।

स्कन्दगुप्त के अभिलेख :

स्कन्दगुप्त के काल के अद्यतन पांच अभिलेख प्राप्त हुए हैं। जूनागढ़-शिलालेख स्कन्द गुप्त का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अभिलेख है। जूनागढ़ वर्तमान गुजरात प्रान्त में स्थित है। इस अभिलेख को सर्वप्रथम 1838 ई. में जेम्स प्रिंसेप महोदय ने प्रकाशित किया।[235] इस लेख को जनरल सर जार्ज ली ग्रैण्ड जेकब तथा एन0एल0 बेस्टगार्ड द्वारा 1842 ई. में रायल एशियाटिक सोसाइटी की बम्बई शाखा के सम्मुख प्रस्तुत किया गया जो 1844 ई. में प्रकाशित हुआ।[236] 1862 ई. में भाऊदाजी ने इस लेख का पाठ तथा अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया।[237] कालान्तर में एगलिंग ने इसका संशोधन प्रस्तुत किया।[238] तदनन्तर जे.एफ. फ्लीट ने इसका सम्पादन किया।[239] जूनागढ़ लेख एक नहीं, वस्तुतः दो भागों में है। प्रथम लेख में 23 तथा द्वितीय लेख में 6 पंक्तियां है। अभिलेख में

गुप्त संवत् 136, 137 तथा 138 का उल्लेख है। अभिलेख में स्कन्द गुप्त के गवर्नर पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित द्वारा सुदर्शन तडाक के बांध के पुनर्निमाण का उल्लेख है।

उत्तर-प्रदेश के देवरिया जिले के कहांव गांव से जो सलेमपुर मझौली से पांच मील दूर स्थित है एक स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। इसी स्तम्भ पर पांच तीर्थकरों की मूर्तियां भी उत्खचित है। यह लेख सर्वप्रथम बुकनान महोदय को प्राप्त हुआ तथा उन्होंने अपनी रिपोर्ट में इसका उल्लेख किया। सन् 1838 ई. में उनकी रिपोर्ट को माण्टगोमरी ने अपनी पुस्तक में उद्धृत किया[240] तथा जेम्स प्रिंसेप ने इसका पाठ एवं अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया।[241] जे.एफ. फ्लीट महोदय ने इसका सम्पादन किया।[242] लेख में उल्लिखित तिथि गुप्त संवत् 141 का ज्येष्ठ मास है तथा इसका उद्देश्य भद्र नामक किसी व्यक्ति द्वारा कुकुभ ग्राम में तीर्थकरों की पांच प्रस्तर मूर्तियों के निर्माण का उल्लेख करना है।

मध्य प्रदेश के सुपिया नामक गांव के समीप से प्राप्त एक स्तम्भ पर स्कन्द गुप्त का एक अभिलेख प्राप्त हुआ जिसे सुपिया स्तम्भ लेख कहा जाता है। इसका प्रथम उल्लेख बहादुर चन्द छाबड़ा[243] तथा प्रकाशन दिनेश चन्द सरकार[244] ने किया। इस अभिलेख में कुल 8 पंक्तियां हैं। अभिलेख में तिथि (गुप्त संवत्) 1&1 के ज्येष्ठ मास की तिथि 2 है। अभिलेख में स्कन्दगुप्त का नाम उसकी वंशावली के साथ उत्खचित है। वंशावली का प्रारम्भ घटोत्कच से किया गया है। अभिलेख का मुख्य प्रतिपाद्य बल-यष्टि अथवा गोत्र शैलिक की स्थापना है।

उत्तर-प्रदेश के बुलन्दशहर जिले की अनूप शहर तहसील के इन्दौर नामक ग्राम से लगभग 8 इंच लम्बे तथा साढ़े पांच इंच चौड़े ताम्रफलक पर स्कन्द गुप्त का एक लेख प्राप्त हुआ जो इन्दौर ताम्रपत्र कहा जाता है। इसके प्राप्तकर्ता ए.सी. एल. कार्लाइल, प्रकाशक कनिंघम[245] तथा सम्पादक जे.एफ. फ्लीट[246] है। अभिलेख 12 पंक्तियों का संवहन करता है। संस्कृत भाषा में निबद्ध यह लेख गद्य-पद्य

मिश्रित शैली में उत्कीर्ण है। इसमें प्राप्त दो श्लोक क्रमशः शार्दूल विक्रीडित एवं इन्द्रवज्रा छन्द में हैं। लेख संवत् (गुप्त) 146 तथा फाल्गुन मास की तिथि युक्त है। लेख का उद्देश्य देव विष्णु नामक ब्राह्मण द्वारा इन्द्रपुर के सूर्य मन्दिर को अक्षयनीवी दान दिये जाने का उल्लेख करना है। लेख में परम भट्टारक महाराजाधिराज स्कन्दगुप्त तथा उनके अन्तर्वेदी स्थित विषयपति शर्वनाग का उल्लेख है।

उत्तर-प्रदेश के गाजीपुर जनपद के सैदपुर तहसील के भितरी ग्राम से एक खड़े लाल प्रस्तर के स्तम्भ एक लेख उत्खचित प्राप्त है जिसे भितरी-प्रशस्ति कहा जाता है। इस स्तम्भ के अन्वेषण का मूल श्रेय ट्रेगियर को है। इसका प्रकाशन सन् 1836 ई. में जेम्स प्रिंसेप महोदय ने किया।[247] 1867 ई. में रेवरेण्ड डब्ल्यू. एच. गिल[248], 1875 ई. में भाऊदाजी[249] ने तथा 1885 ई. में भगवान लाल इन्द्रजी[250] ने इसका अनुवाद एवं पाठ प्रस्तुत किया। इसका सम्पादन जे0एफ0 फ्लीट ने किया।[251] यह लेख स्तम्भ के आधार पीठ पर 2'4/1/4'' ग 4'2/1/4'' क्षेत्रफल में उत्खचित है। प्राकृतिक प्रकोप के कारण इसके कुछ अंश क्षतिग्रस्त हो गये हैं। संस्कृत भाषा में निबद्ध लेख में कुल 19 पंक्तियां हैं। छठीं पंक्ति के अर्ध भाग तक का अंश गद्यात्मक एवं उसके बाद का भाग पद्यात्मक है। लेख अतैथिक है तथा इसका उद्देश्य प्रथम कुमार गुप्त की स्मृति में स्कन्द गुप्त द्वारा भगवान विष्णु की प्रतिमा स्थापित करवाने तथा जिस गांव में स्तम्भ स्थित है उसे प्रतिमा के लिए दान दिये जाने की घोषणा करना है।

पुरुगुप्त का अभिलेख :

पुरुगुप्त का अभिलेख बिहार से प्राप्त है। यह उसी पाषाण खण्ड पर उत्खचित है जिस पर कुमार गुप्त प्रथम का लेख उत्खचित है। इस लेख में कुल 20 पंक्तियां हैं कुछ दिन पूर्व तक विद्वान इसे स्कन्दगुप्त का अभिलेख स्वीकार करते थे किन्तु सर्वप्रथम दिनेश चन्द सरकार ने इसे पुरुगुप्त का लेख होने की संभावना व्यक्त की।[252] इसे प्रकाश में लाने का श्रेय रैवनशा को है।[253] 1866 ई. में राजेन्द्र

लाल मिश्र ने इसकी मिट्टी पर छाप कराकर पकवाया तथा पकी मिट्टी की छाप से इसकी प्रतिलिपि तैयार कर इसका पाठ प्रकाशित किया।[254] इसी आधार पर कनिंघम ने इसे प्राशित कराया[255] तथा फ्लीट ने इसका सम्पादन किया।[256] अभिलेख अत्यन्त क्षतिग्रस्त अवस्था में है। अतः इसका आशय ज्ञात नहीं है।

बुद्धगुप्त के अभिलेख :

अब तक बुद्धगुप्त के शासनकाल के आठ अभिलेख प्राप्त हुए हैं। उत्तर-प्रदेश के बनारस (वाराणसी के समीपस्थ स्थित सारनाथ के उत्खनन से सन् 1914-15 ई. में बुधगुप्त के दो अभिलेख प्राप्त हुए जो बुद्ध-मूर्ति पर उत्खचित हैं तथा जिनका वर्ण्य-विषय भी समान है। लेख का पूर्ण आशय दोनों लेखों को साथ जोड़ने पर ही ज्ञात होता है। अभिलेखों में बुधगुप्त के शासन के संवत् (गुप्त) 157 के वेशाख मास के कृष्ण पक्ष के सप्तमी को बुद्ध मूर्तियों का अभयमित्र द्वारा प्रतिष्ठित करने का उल्लेख है।

बुधगुप्त का एक ताम्रपत्राभिलेख पहाड़पुर (राजशाही-पूर्वी बंगाल) से इस स्थान के उत्खनन के समय महाबिहार के आंगन से मिला है। इसका प्रकाशन इसके प्राप्तकर्ता काशी नारायण दीक्षित ने कराया।[257] अभिलेख का उद्देश्य बट गोहाली में स्थित जैनाचार्य गुहनन्दि के बिहार के लिए ब्राह्मण नाथ शर्मा और उसकी पत्नी रामी द्वारा प्रदत्त भूमिदान को निबद्ध करना है।

वाराणसी के राजघाट से एक स्तम्भ पर उत्कीर्ण बुधगुप्त का एक लेख प्राप्त होता है। इस स्तम्भ की ऊंचाई 4 फुट 4 इंच है जिसके चारों ओर विष्णु के चार अवतारों की मूर्तियां उत्टंकित हैं। इसके प्रकाशन का श्रेय दिनेश चन्द सरकार को है।[258] अभिलेख में गुप्त संवत् 159 के मार्गशीर्ष का उल्लेख है।

दामोदरपुर जो पूर्वी बंगाल के दीनाजपुर जिले में स्थित है, से बुधगुप्त का एक अन्य अभिलेख भी प्राप्त हुआ है। इसका वर्ण्य विषय भी अन्य लेखों की भांति

ही है तथा इसका प्रकाशन राधा गोविन्द बसाक ने कराया था[259] अभिलेख में विकृत है कि गुप्त संवत् 163 के आषाढ़ मास के 13वें दिन जब बुधगुप्त का शासन था महाराज ब्रह्मदत्त पुण्ड्रवर्धन मुक्ति के उपरिक थे। चण्डग्राम के कतिपय ब्राह्मणों की निवास–व्यवस्था के लिए ग्रामिक नाभाग ने एक कुल्यवाप खिल भूमि क्रय करने का जो निवेदन प्रस्तुत किया था, वह प्रचलित दर का मूल्य लेकर स्वीकार किया गया।

बुध गुप्त का एरण प्रस्तर स्तम्भ लेख मध्य प्रदेश के सागर जिले के एरण नामक स्थल से 1838 ई. में कैप्टर टी.एस. बर्ट को प्राप्त हुआ था। जेम्स प्रिंसेप ने इसका पाठ तथा अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया।[260] लेख लाल बलुएदार एकाश्मीय प्रस्तर–स्तम्भ के निचले चौकोर भाग पर 2'6/1/2'' x 1' 7/1/2'' क्षेत्रफल में उत्खचित है। लेख में सम्पूर्ण रुप से 9 पंक्तियां हैं। लेख का उद्देश्य बुधगुप्त के शासनकाल में महाराज मातृविष्णु एवं उसके भाई धन्यविष्णु द्वारा भगवान जनार्दन के सम्मान में ध्वज स्तम्भ की स्थापना का वर्णन है। इसके सम्पादन का श्रेय जे.एफ. फ्लीट को है।[261]

दामोदरपुर से बुधगुप्त का चतुर्थ ताम्रपत्राभिलेख भी प्राप्त हुआ है। इसका सम्पादन राधा गोविन्द बसाक तथा[262] तथा दिनेश चन्द सरकार ने कतिपय शब्दों की व्याख्या प्रस्तुत की।[263] लेख में जिस स्थल पर उत्कीर्ण वर्ष का उल्लेख था वह सील अपठ्य हो गया है मात्र 15 फाल्गुन अंश ही पठ्य है। अभिलेख में कोकमुख स्वामी तथा श्वेतवराह स्वामी नामक देवताओं के लिए एक नामलिंग, दो देवकुल और दो कोष्ठक बनवाने के लिए नगर श्रेष्ठि ऋभुपाल द्वारा भूमि क्रय करने का उल्लेख है।

नन्दपुर ताम्रपत्राभिलेख बिहार प्रान्त के मुंगेर जिले के अन्तर्गत स्थित नन्दपुर नामक ग्राम के एक जीर्ण मन्दिर के ताख में संयुक्त था जो 1929 ई. गणपति सरकार को प्राप्त हुआ था। इसका सम्पादन एन0जे0 मजूमदार ने किया।[264] इस अभिलेख में विषयपति द्वारा पंचयज्ञ प्रवर्तन के निमित्त दान देने के लिए भूमि क्रय का वर्णन है।

भानुगुप्त का अभिलेख :

मध्य-प्रदेश के सागर जिले के एरण नामक स्थान पर बीणा नदी के किनारे एक छोटा सा स्तम्भ स्थापित है जिसे जनमानस शिव लिंगकार करता है। इसका अधोवर्ती भाग अष्टांशिक है। इसी के तीन अंशों पर भानुगुप्त का लेख अंकित है जिसके अन्वेषण का श्रेय कनिंघम को है। इसका सम्पादन जे.एफ. फ्लीट ने किया था।[265] अभिलेख में विकृत है कि इसी स्थल पर गोपराज की पत्नी सती हुई थी। यह भी विकृत है कि गोपराज अपने नरेश भानुगुप्त के साथ यहां आया था तथा युद्ध में मारा गया था। अभिलेख में (गुप्त) संवत् 191 के श्रावन मास के तिथि 7 का उल्लेख है।

वैन्यगुप्त का अभिलेख :

वैन्यगुप्त का एक ताम्रपत्राभिलेख बंगला देश के तिपेरा जिले के गुणैधर नामक स्थान से प्राप्त हुआ है जिसे वैन्यगुप्त का गुणैधर ताम्रपत्राभिलेख कहा जाता है। यह ताम्रपत्र 1918 ई. में एक तालाब की सफाई करते समय प्राप्त हुआ था। अभिलेख की पंक्ति 18-19 तथा 21 में प्राप्त अंशो के आधार पर इसे गुणैधर का ताम्रपत्राभिलेख स्वीकार किया जाता है। लेख ताम्रपत्र के दोनों ओर अंकित है। इसमें कुल 31 पंक्तियां उत्खचित है। 23 पंक्तियां पुरोभाग पर तथा शेष पृष्ठ भाग पर अंकित है। ताम्रपत्र के साथ वृषभ अंकित तथा 'महाराज श्री के (न्यगुप्तस्य) लेखांकित मुहर संयुक्त है। भूमिदान से सम्बन्धित तीन श्लोको को छोड़कर शेष भाग गद्यात्मक शैली में है। अभिलेख का उद्देश्य इस तथ्य का निरुपण है कि महाराज श्री वैन्यगुप्त ने आचार्य शान्तिदेव द्वारा निर्मित कराये गये अवलोकितेश्वराश्रम बिहार को 11 पाटक भूमि उत्तर-मण्डल-अन्तर्गत कान्तेदण्डक ग्राम में पूजा के व्यय, रोगियों की सहायता तथा विहार के संस्कार के निमित्त प्रदान की। इस अभिलेख के प्रकाशन का श्रेय दिनेश चन्द भट्टाचार्य को है।[266]

विष्णुगुप्त का अभिलेख :

दामोदरपुर (बंगला देश) से जो पांच ताम्रपत्राभिलेख प्राप्त हुए उनमें अन्तिम अर्थात् पांचवा विष्णु गुप्त के दामोदरपुर ताम्रपत्राभिलेख के रुप में ज्ञात है। इसका आकार 6/3/8" x 4/7/8" है तथा उभय पक्षों में उत्टंकित है। अभिलेख में समग्ररुप पृष्ठभाग पर उत्खचित हैं। 13 पंक्तियां अग्रभाग पर तथा 9 पंक्तियां पृष्ठ भाग पर उत्खचित हैं। उत्खचित पंक्ति 1-4 तथा 12 के अंश अपठ्य हो गये हैं। अभिलेख का वर्ण्य-विषय भू-विक्रय ही है। लेख में राजा के नाम का पूर्वांश सुरक्षित न होने के कारण तथा अभिलेख में उल्लिखित तिथि के विषय में वैमत्य होने के कारण राधा गोविन्द बसाक ने इसे प्रथमतः भानुगुप्त का स्वीकार किया था।[267] कालान्तर में जब इस तिथि का पाठ सुनिश्चित हो गया तो हीरानन्द शास्त्री[268] ने जहां शासक के नाम का पूर्वांश उत्खचित था उसे कुमार पढा तथा उनके इस मत का अनुमोदन वाई.आर. गुप्ते[269] एन.के. भट्ट साली[270] तथा आर.के. मुकर्जी[271] प्रभृत विद्वानों ने किया तथा राजा का तादात्म्य नरसिंहगुप्त के पुत्र कुमार गुप्त से किया। कतिपय विद्वानों ने इसका तादात्म्य परवर्ती गुप्त सम्राट कुमार गुप्त से स्थापित किया है किन्तु ध्येय बिन्दु यह है कि यह ताम्रलेख जिन ताम्रलेखों के साथ प्राप्त हुआ है, उनसे इसकी पूर्ण साम्यता है। अतः इसे उत्तरवर्ती गुप्त नरेश का अभिलेख स्वीकार कर विप्रतिपत्ति से परे न होगा। कतिपय विसंगतियों के कारण इसे कुमारगुप्त अथवा भानुगुप्त का भी नहीं स्वीकार किया जा सकता, अतः इसे विष्णुगुप्त का मानना ही समीचीन होगा।[272]

गुप्तकालीन अन्य अभिलेख :

उत्तर-प्रदेश के बांदा जिले के इच्छावर ग्राम से हरिराज का एक अभिलेख प्राप्त है। अभिलेख एक कास्य-मूर्ति पर उत्खचित है तथा हरिराज का नामोल्लेख है। इस मूर्ति को प्रतिष्ठित कराने का श्रेय हरिराज की पत्नी को है। इस मूर्ति को प्रतिष्ठित कराने का श्रेय हरिराज की पत्नी को है। कतिपय ऐसे भी अभिलेख प्राप्त

हुए हैं जिन पर अंकित तिथि सम्राट गुप्तों के शासन काल में आती है किन्तु इनमें शासक अथवा उत्खाता का नामोल्लेख प्राप्त नहीं होता। इस भांति के प्रमुख अभिलेखों में (गुप्त) संवत् 131 का सांची शिला-लेख, (गुप्त) संवत् 135 का मथुरा मूर्ति लेख, (गुप्त) संवत् 330 का मथुरा मूर्ति लेख आदि प्रमुख हैं। गुप्तकाल के अन्य समसामयिक अभिलेख भी प्राप्त हुए हैं जो गुप्तेतर व्यक्तियों द्वारा उत्खचित कराये गये। इस भांति के अभिलेखों में उच्च कल्पवंशीय शर्वनाथ का खोह का दानपत्र,परिव्राजक वंशीय संक्षोभ का खोहदान पत्र,नरवर्मा का मन्दसोर, शिलालेख, नरवर्मा का विहार-कोटरा शिलालेख, विश्ववर्मा का गंगाधर शिलालेख, प्रभाकर का मन्दसोर-लेख, बन्धुवर्मा का मन्दसोर पाषाण लेख, तोरमाण का कुरा पाषाण-लेख, तोरमाण का एरण वरण्हमूर्ति लेख, मिहिर कुल का ग्वालियर पाषाण लेख, यशोधर्मा का मन्दसोर पाषाण लेख, प्रभावती गुप्ता का पूना दानपत्राभिलेख, द्वितीय प्रवरसेन का चमक दानपत्र, प्रभावती गुप्ता का रिधपुर अभिलेख, उदयसेन का मुण्डेश्वरी अभिलेख, महाराज नन्दन का अमौना दानपत्राभिलेख आदि हैं।